भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) की केन्द्रीय कमेटी का मुखपत्र

प्रतिरोध का स्वर

फरवरी 2020

वर्ष 34
संख्या 2

मूल्य
2 रुपये

2020-21 आम बजट पर केन्द्रीय कमेटी का वक्तव्य

आर्थिक संकट का बोझ जनता पर डाला गया

वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत 2020-21 के केन्द्रीय बजट में एक संकटग्रस्त अर्थव्यवस्था और सरकार द्वारा संकट का बोझ जनता पर लादने के सभी चिन्ह मौजूद हैं। सत्ता पक्ष के उतरे हुए चेहरों के बीच वित्तमंत्री दर्शक दीर्घा को खुश करने के लिए ढाई घंटे तक पसीना बहाती रहीं और अंततः विफल होकर वह बैठ गयीं। पूरा बजट भाषण अर्थव्यवस्था के बुरे हाल को न स्वीकार करने का एक बेशर्म प्रयास था और आर्थिक संकट के लिए तथा जनता की परेशानियों को बढ़ाने के लिए जो कारक जिम्मेदार हैं, उन्हीं को उतनी ही बेशर्मी से इनका समाधान बताया गया।

उत्तरोत्तर सालों में प्रस्तुतियों में आंकड़ों की बाजीगरी पर सरकार ने इतनी महारत हासिल कर ली है कि अब हर तथ्य संदेह के दायरे में है। आरएसएस-भाजपा ने ऐसे बहुत से संदेहास्पद तथ्य पेश किये और जो असुखद थे, उनके प्रकाशन पर रोक लगा दी। वित्तीय वर्ष से दो माह पहले ही वित्तमंत्री ने पूरे साल के आंकड़े पेश कर दिये जो केवल अंदाज ही हो सकते हैं। सरकार ने व द्धि दर आंकने का तरीका ही बदल दिया पर इस परिवर्तित तरीके से भी वह आर्थिक मंदी के सच को छिपा नहीं सकी। इन तिकड़मों के बावजूद व द्धि दर के आंकड़े पिछले 7 सालों में सबसे निचले पायदान पर हैं। वित्तमंत्री ने यह बात भी स्वीकार नहीं की कि बेरोजगारी की दर अब तक के चरम पर पहुँच चुकी है, जबकि सीएमआईई (सेन्टर फार मॉनीटरिंग इंडियन इकोनॉमी) ने इसे 7.3 फीसदी पर आंक कर कहा है कि यह बीते लगभग 50 सालों में सबसे ऊँचे स्तर पर है। लोगों की कठिनाईयों की स्थिति, ग्रामांचल में घटता उपभोग, गांव व शहर दोनो जगह मजदूरी दर में गिरावट और आवश्यक वस्तुओं की घटती बिक्री की स्थिति में आर्थिक व द्धि होने की कोई संभावना ही नहीं है।

देश भर में मौजूद गहरे आर्थिक संकट की बात छोड़िये आरएसएस-भाजपा आर्थिक मंदी के तथ्य को भी स्वीकार नहीं करना चाहते। ऐसा स्वीकार करना उसके कारकों पर गौर करने व समाधान ढूंढने का दबाव बनाएगा, जिसकी अनुमति इनके कारपोरेट आका - देसी व विदेशी - नहीं देंगे। इस आर्थिक मंदी के मौलिक कारण से उन्होंने अपनी नज़र हटा ली है। यह है मांग का गिरना, जो लोगों की, जिसका विशाल बहुमत मजदूर व किसान हैं, घटती क्रय क्षमता के कारण हो रहा है। बजट में इस स्थिति को सुधारने का एक भी प्रस्ताव नहीं है, किसानों, खेतिहर मजदूरों व औद्योगिक मजदूरों की क्रय क्षमता बढ़ाने की दिशा ही नहीं है।

इसके इतर सरकार ने विदेशी व घरेलू कारपोरेट की सेवा में और बड़े जमींदारों की रक्षा के लिए जनता की लूट बढ़ाने के कई प्रस्ताव दिये हैं। उसने सामाजिक क्षेत्र के खर्च में कटौती की है और जनता की समस्याओं को हल करने के लिए निजीकरण के मंत्र का जाप किया है। बीते वर्ष में पहले ही सरकार ने आरबीआई समेत सार्वजनिक बैंकों तथा सार्वजनिक उद्योगों से चोरी बढ़ाई है, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का विनिवेश किया, सामाजिक क्षेत्र के खर्च में कटौती की, जबकि यह पहले से ही बहुत कम है। इसके बावजूद वित्तीय घाटा बढ़ गया है और ऐसा इसलिए नहीं हुआ है क्योंकि जनता के लिए कोई कदम उठाए गये हैं, बल्कि इसलिए क्योंकि कारपोरेट की सेवा की गयी है।

आरएसएस-भाजपा सरकार के बजट प्रस्ताव पुराने रास्ते पर चल कर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के विनिवेश और सामाजिक क्षेत्र के खर्च में कटौती करने के साथ विभिन्न वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर बढ़ा कर जनता पर बोझ बढ़ाने के प्रस्ताव देते हैं। यह बजट हाल के पिछले सालों में जनता पर सबसे बड़ा हमला है। एक के बाद एक क्षेत्र से वित्तीय सहयोग हटा लिया गया है जबकि टैक्स में कटौती के रूप में कारपोरेट को बहुत सारी रियायतें दी गयी है।

सरकार ने 2.11 लाख करोड़ का विनिवेश लक्ष्य रखा है जिसमें से 1.2 लाख सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की बिक्री से आएगा और 90 हजार करोड़ सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं की बिक्री से आएगा, जिसमें बैंक व एलआईसी शामिल हैं। एलआईसी की बिक्री एक आईपीओ (प्राथमिक सार्वजनिक ऑफर) गठित करके की जाएगी। एयर इंडिया, भारत पेट्रोलियम और कॉनकार जैसे सार्वजनिक उद्योग भी बेचे जाएंगे। जो हाईवे परियोजनाएं हैं इन्हें भी पैसे में बदला जाएगा, यानी टोल टैक्स बढ़ेगा। रेलवे का भी निजीकरण किया जाना है, जिसके विभिन्न क्षेत्र निजी कम्पनियों को दिये जाएंगे। इस सबसे सरकारी खजाना बढ़ेगा जो आरएसएस-भाजपा के कारपोरेट मित्रों पर खर्च किया जाएगा।

बजट में खेती व ग्रामांचल की पूरी तरह से उपेक्षा की गयी है, जो इसका एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू है। देश के दो तिहाई लोग ग्रामांचल में रहते हैं, जबकि खेती में देश की आधी श्रम शक्ति काम करती है। खेती, सिंचाई व ग्रामीण विकास के लिए प्रभावी आबंटन को काट दिया गया है। खेती व सिंचाई के लिए 1.6 लाख करोड़ रुपये रखे गये हैं जबकि ग्रामीण विकास के लिए 1.23 लाख करोड़। यह पिछली साल की तुलना में 2.5 फीसदी ज्यादा है, जो मंहगाई व द्धि दर से भी कम है। खेती से सम्बन्धित 16 सूत्रीय घोषणाओं में एक भी घोषणा कृषि संकट को संबोधित नहीं करती। दूसरी तरफ खाद की छूट में कटौती की गयी है, जिसका अर्थ है कि खाद के दाम बढ़ेंगे। साथ में डीजल पर लगे कर उसके दाम भी बढ़ाएंगे और कुल मिलाकर खेती में लागत और मंहगी हो जाएगी। इन प्रस्तावों में न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने या इसका आवरण

(आगे पृष्ठ 6 पर)

पदोन्नति में आरक्षण के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय का फैसला तथा आरएसएस की आरक्षण समाप्त करने की मुहिम

उच्चतम न्यायालय द्वारा 9 फरवरी 2020 को पदोन्नति में आरक्षण पर फैसला अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान में आरक्षण के प्रावधानों पर हमला है। दरअसल शासक वर्गों के सत्ता प्रतिष्ठान उत्पीड़ित जातियों को समान अवसर देने के विरोधी रहे हैं। पहले से ही उच्चतम न्यायालय सहित उच्च न्यायपालिका ने जातीय उत्पीड़न के खिलाफ कदमों के रास्ते में व्यवधान खड़े किये हैं। साथ ही केन्द्र में सत्तारूढ़ आरएसएस-भाजपा शुरू से ही आरक्षण की विरोधी रहे है। दरअसल संघ सामाजिक न्याय की अवधारणा के ही विरुद्ध है। वह इसके स्थान पर सामाजिक समरसता की हिमायती है, जिसका अर्थ है कि विभिन्न जातियां जाति व्यवस्था में अपने स्थान से संतुष्ट रहें तथा इस अमानवीय सामाजिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास न कर समरसता बनाये रखें।

वर्तमान केस उत्तराखंड से है जहां प्रान्त सरकार ने 2012 में एक आदेश के जरिये पदोन्नति में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षण को खत्म कर दिया था। उक्त आदेश के तहत पदोन्नति में आरक्षण खत्म करने को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। उल्लेखनीय है कि उत्तराखंड सरकार ने उक्त आदेश के जरिये पदोन्नतियों में पहले से चली आ रही आरक्षण व्यवस्था को खत्म किया था। अर्थात मामला आरक्षण को खत्म करने का था।

उक्त केस में फैसला सुनाते हुए उच्चतम न्यायालय ने संविधान प्रदत्त आरक्षण के खिलाफ कई आवांछनीय टिप्पणियां की हैं। दरअसल उच्च न्यायपालिका शुरु से ही आरक्षण को अवसरों में समानता के विरुद्ध मानती रही है। उच्च न्यायपालिका ने संविधान की इस मूल भावना को कभी आत्मसात ही नहीं किया कि आरक्षण समानता के विरुद्ध नहीं, बल्कि समानता को अमल में लाने का औजार है। आरक्षण असमान को समान बनाने की ओर कदम है, सामाजिक विषमता दूर करने की ओर एक कदम है। इसके उलट उच्च न्यायपालिक ने जहां इसको उचित भी ठहराया वहां भी इसे समान अवसरों पर एक चोट माना, समानता के सिद्धान्त के खिलाफ ठहराया। इसलिए आरक्षण को अवसरों में समानता के खिलाफ मानते हुए इसकी सीमा आधे से कम पर सीमित कर दी भले ही जिनके लिए आरक्षण किया जा रहा है, वे समाज का बड़ा किस्सा हैं, आधे से कहीं ज्यादा।

यह भी प्रासंगिक है कि उच्चतम न्यायालय ने आरक्षण को मौलिक अधिकारो की श्रेणी से बाहर बताया। अनुच्छेद 15 तथा 16 जिनमें आरक्षण का प्रावधान है, संविधान के उस अध्याय में है जो मौलिक अधिकारों से संबंधित है। बड़ी बात यह है कि आरक्षण समानता के लिए एक जरूरी उपाय के रुप में संविधान में स्वीकार किया गया है। इसलिए यह निश्चय ही मौलिक अधिकार है।

दरअसल उच्च न्यायपालिका की आरक्षण विरोधी धारणा उस जातिवादी सामंती धारणाओं के अनुरुप हैं जिसका प्रभाव राज्य मशीनरी में काफी अधिक है। न्यायपालिका औपनिवेशिक शासन की मशीनरी का भाग थी, जिसे 1947 में सत्ता के हस्तांतरण के समय हू-ब-हू अपना लिया गया। सामाजिक न्याय की जो अवधारणा औपनिवेशिक शासन के खिलाफ स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान घनीभूत हुई, न्यायपालिका इस प्रभाव का भाग नहीं थी, बल्कि उसके विरुद्ध थी। दरअसल उच्च न्यायपालिका में जातिवादी सामंती तत्वों का बड़ा प्रभाव था। अप्रासंगिक नहीं है कि भूमि सुधार कानूनों का उच्च न्यायालयों में लंबे समय तक लटकाये रखा गया ताकि जमींदारों को विभिन्न बहानों से अपनी जमीनें बचाने के लिए पर्याप्त समय मिल सके।

आरक्षण की संविधान स्वीकृत व्यवस्था को उच्च न्यायपालिका में हर मोड़ पर अवरोध का सामना करना पड़ा। न्यायालयों की व्याख्याएं आरक्षण के अधिकार को अधिकाधिक सीमित करने की ओर रही हैं। उच्च न्यायपालिका ने आरक्षण को केवल शुरुआती बहाली तक सीमित कर दिया। इसी कारण 1995 में संविधान में संशोधन कर अनुच्छेद 16 (4ए) नया प्रावधान लाया गया। इसमें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गई और उसके लिए केवल एक शर्त रखी गई कि सरकार की राय में राज्य की सेवाओं में उनका प्रतिनिधित्व पर्याप्त न हो। स्पष्ट है कि यह प्रावधान राज्य की सेवाओं में जातीय अहंकार उक्त समुदायों के सदस्यों के अवसरों को छीनता है।

आरक्षण के मुद्दों पर भारत की उच्च न्यायपालिका ने न्यायशास्त्र के स्थापित सिद्धांत की खुलेआम अवहेलना की है कि सामाजिक कल्याण के लिए बनाये गये कानूनी प्रावधानों की व्याख्या व्यापक होनी चाहिए अर्थात व्याख्या के पीछे भावना अधिकाधिक लोगों को इस सामाजिक लाभ के दायरे में लाने की होनी चाहिए तथा सामाजिक लाभ का दायरा भी व्यापक होना चाहिए। परन्तु भारत में उच्च न्यायपालिका ने आरक्षण के प्रावधानों की संकुचित व्याख्या की, उसे इतना संकुचित कर दिया कि इसके उद्देश्यों को हासिल करने पर ही प्रश्न चिन्ह लग गया।

पदोन्नति में आरक्षण लागू करने के लिए एक ही शर्त्त संविधान में रखी गई है कि सरकार की राय में राज्य की सेवाओं में अनुसूचित जातियों व जनजातियों का

(आगे पृष्ठ 6 पर)

अमेरिका द्वारा ईरानी जनरल की हत्या से मध्यपूर्व में अंतर्विरोध और तेज हुए

ईरान के ताकतवर सैनिक नेता और देश के रेवेलुशनरी गार्ड्स के कुद्स बल के मुखिया मेजर जनरल कासिम सुलेमानी की अमेरिका द्वारा बगदाद हवाई अड्डे में किए गये मिसाइल हमले में हत्या ने मध्यपूर्व में तनाव को और बढ़ा दिया है। अमेरिकी साम्राज्यवाद और उसके सहयोगी, मुख्यतः इजराइल के जियनवादी शासक और सऊदी राजशाही ईरान के साथ एक तरह के युद्ध में जुझे हुए हैं। ईरान के शासकों ने रूस और चीन से करीबी सम्बन्ध बना लिए हैं। ये अन्तर्विरोध ऐसी परिस्थिति में तेज हो रहे हैं, जहां अमेरिकी नेत त्व वाला मोर्चा मध्य पूर्व में तीव्र विभाजन से ग्रसित है। इसमें तुर्की व कतर व हद मध्य पूर्व क्षेत्र में ईरान व रूस के प्रति एक अलग रुख अपना रहे हैं। अमेरिकी नेत त्वकारी खेमे में एक और महत्वपूर्ण दरार यूरोप में खड़ी हो गयी है जहां यूरोपीय ताकतों ने मध्य पूर्व के प्रति, खासतौर से ईरान से सम्बन्ध को लेकर अमेरिकी प्रशासन से भिन्न रवैया अख्तियार किया हुआ है, विशेषकर ईरान के साथ उसके परमाणु कार्यक्रम पर पी-*5+1* देशों की ईरान के साथ संधि को लेकर। अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा की गयी यह हत्या इराक में सद्दाम हुसैन के पश्चात सत्तारूढ़ शासक गुटों के भीतर गहरे अन्तर्विरोधों से भी सम्बन्धित है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा ईरान के सैनिक कमान्डर सुलेमानी और इराक के पापुलर मोबलाइजेशन फोर्स (पीएमएफ) के उप प्रमुख, अबू महादी अल-मुहान्दिस की हत्या, जाहिर है अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के विपरीत है। अमेरिका ईरान के साथ युद्ध में नहीं है। अतः ईरान के सैनिक कमान्डर की निशाना लगाकर हत्या नहीं की जा सकती थी। संयुक्त राष्ट्र के अधिकारियों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि अमेरिकी कार्रवाई अन्तर्राष्ट्रीय कानून के दायरे में नहीं है। पर अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून की कभी भी परवाह नहीं की है और ट्रम्प तो इसका दिखावा करने का भी नाटक नहीं करता। अमेरिकी साम्राज्यवादी शासकों ने यह दावा किया है कि यह हत्या राष्ट्रपति ट्रम्प के आदेश पर की गयी और यह अमेरिकी सेना पर उन हमलों को रोकने के लिए की गयी थी जिनकी तथाकथित योजना जनरल सुलेमानी बना रहे थे। अमेरिकी प्रशासन ने यह हास्यास्पद दावा भी किया है कि यह हत्या युद्ध रोकने के लिए की गयी है ना कि ईरान के साथ युद्ध शुरु करने के लिए।

इस हमले को अंजाम देना यह भी दिखाता है कि ट्रम्प प्रशासन द्वारा प्रतिपादित ''अधिकतम दबाव'' की नीति विफल रही है। ट्रम्प प्रशासन ने ईरान के साथ किये गये आणविक समझौते से अपने हाथ खींच लिये थे और ईरान पर गम्भीर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिये थे। उसने ईरानी तेल बेचने को प्रतिबंधित कर दिया था और ईरान के साथ व्यापार करने वाली कम्पनियों को ब्लैकलिस्ट कर दिया था। कई देश अमेरिकी दबाव में आ गये और उन्होंने ईरान से कच्चा तेल खरीदना कम या बंद कर दिया और इस देश से व्यापार ही बंद कर दिया। भारत भी इन देशों की श्रेणी में आता है जिसने ईरान से कच्चे तेल की खरीद को कम कर दिया है। अब तक ट्रम्प अपने प्रतिबंधों की सफलता का, जिसे वो "अधिकतम दबाव" कहता है, गुणगान करता था पर इस कदम से उसने अपनी कार्यनीति की विफलता को स्वीकार कर लिया है।

जनरल सुलेमानी मुख्य रूप से मध्यपूर्व में ईरान की सैनिक गतिविधियों के जिम्मेदार थे विशेषकर इन देशों में कार्यरत विभिन्न संगठनों को सहायता देने के विषय में उनकी विशेष भूमिका थी। उन्होंने सीरिया में असद सरकार और लेबनान में हिजबुल्ला को ईरानी सैनिक समर्थन देने के काम का समन्वय किया था। इराक में इस्लामिक स्टेट के विरुद्ध ईरान के सैनिक प्रयासों का चेहरा भी वही थे। *2014* में आईएस सैनिकों के आगे बढ़ने के समय जब अमेरिकी प्रशिक्षित सेना पीछे हटी तब आईएस के विरुद्ध युद्ध में पापुलर मोबलाईजेशन फोर्स (पीएमएफ) अस्तित्व में आई। पीएमएफ उसके बाद ईराकी सेना में एक अर्ध सैनिक बल के रूप में शामिल कर ली गयी है। पीएमएफ को मुख्य रूप से ईरान से समर्थन मिलता था और इस समर्थन का समन्वय सुलेमानी करते थे।

अमेरिका व उसके सहयोगियों द्वारा *2003* में किए गये कब्जे के साथ सद्दाम हुसैन की सरकार के हटने के बाद से ईराक में राजनीतिक नियंत्रण मुख्यतः उस देश की बहुसंख्यक शिया समुदाय में आधारित गुट करते रहे हैं। अपने सैनिक कब्जे के लिए कुछ समर्थन हासिल करने के उद्देश्य से अमेरिकी साम्राज्यवाद ने भी शिया धर्मगुरुओं के साथ दोस्ती गांठी। ईराक के शियाओं के साथ अपने करीबी सम्बन्धों और सद्दाम हुसैन सरकार के विरुद्ध *1980* से *1988* के बीच लड़े गये आठ साल के लम्बे युद्ध के अन्तर्विरोध के चलते ईरानी शासकों को इस परिस्थिति में ईराक में अपना प्रभाव बढ़ाने का मौका दिखने लगा और उन्होंने इस देश में अपना समर्थन बढ़ाने के लिए व्यवस्थित ढंग से काम किया। शिया नेताओं पर निर्भर होने की बाध्यता ने अमेरिका को नाखुशी के बावजूद ईरान के प्रभाव को बढ़ने देने के लिए बाध्य किया। फिर भी ओबामा के नेत त्व में अमेरिकी प्रशासन ने आईएस के सैनिक अभियान का इस्तेमाल करते हुए इस प्रभाव के बढ़ने से चिंतित होकर तत्कालिक प्रधानमंत्री मलिकी को सत्ता से हटवा दिया। मलिकी ईरान के शासकों के करीबी माने जाते थे। आईएस के विरुद्ध युद्ध ने ईरान को इराक के भीतर अपने प्रभाव को और बढ़ाने का अवसर दिया। अमेरिका द्वारा आईएस द्वारा हमले का इस्तेमाल ईराक में मलिकी को सत्ता से हटाने के अपने राजनीतिक उद्देश्य के लिए किया। आईएस पर पहले आक्रमण न करने ने उसकी प्रतिष्ठा और गिरा दी।

इराक की सत्ता प्रतिष्ठान के भीतर अन्तर्विरोधो के तेज होने के सवाल को ईरान और अमेरिका तथा उसके सहयोगियों के बीच बढ़ रहे तनाव की प ष्ठभूमि में, जो साम्राज्यवादी ताकतों के बीच बढ़ते अन्तर्विरोधों से सम्बन्धित भी है और उसका प्रतिबिम्ब भी है, देखा जाना चाहिए। विभिन्न शासक गुटों द्वारा खुलेआम या तो ईरान या अमेरिका का समर्थन करना, उस देश में अमेरिका की सैनिक उपस्थिति और कुछ सैनिक बलों द्वारा ईरान के साथ खड़ा होना, इराक को अमेरिका और ईरान के बीच एक खुली रणभूमि की स्थिति में खड़ा कर देती है। जनरल सुलेमानी की हत्या के बाद की परिस्थिति में इन अन्तर्विरोधों का और तेज होना लाजमी है। इस स्थिति का इस्तेमाल कर ईरान चाहेगा कि वह इराक में अपने प्रभाव को और बढ़ा ले और इस कारण इराक में अमेरिका की सैनिक उपस्थिति और अधिक दबाव में आएगी। अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ ईरान द्वारा खुला युद्ध करने की सम्भावना कम है। इराकी सरकार ने इस हत्या की निन्दा की है और सत्ता में बैठे कई महत्वपूर्ण लोगों ने इस स्थिति में सावधानी बरतने की हिदायत दी है। इराक के शासकों का एक हिस्सा नहीं चाहता कि इराक से अमेरिकी सैनिक हटें हालांकि अमेरिकी कार्रवाई के खिलाफ इराकी जनता के गुस्से के चलते वह इस कार्रवाई के खिलाफ बयान दे रहा है। इराकी संसद द्वारा पारित प्रस्ताव में भी इराक से सभी विदेशी सैनिकों की वापसी की मांग की गई है। यह प्रस्ताव ठोस रूप से अमेरिका सैनिकों को हटाये जाने की मांग नहीं करता।

इस हत्या से तुरंत पहले जो घटनाएं हुईं उनमें शुरुआत उत्तर इराक में *27* दिसम्बर को एक अमेरिकी सुविधा पर हमला हुआ जिसमें एक अमेरिकी ठेकेदार की म त्यु हुई थी। इसके दो दिन बाद अमेरिका ने कोतायब हिजबुल्ला शिविर पर हमला कर उसके *25* नेताओं व कैडरों को मार गिराया। इस अर्धसैन्य गुट का सम्बंध ईरान से था। इसके पश्चात बगदाद के "हरित क्षेत्र" जहां इराक के सरकारी दफ्तर स्थित हैं, के भीतर, जो भारी सुरक्षा कवच से घिरा है, अमेरिकी दूतावास पर जुझारु प्रदर्शन किये गये, जिनमें हजारों प्रदर्शनकारी दूतावास की इमारत तक प्रदर्शन करते पहुँचे और उसके कुछ बाहरी हिस्से में आग लगा दी। इस प्रदर्शन के लिए अमेरिका ने ईरान पर दोष लगाया और इसे हमला बताते हुए प्रति हमला करने का संकल्प व्यक्त किया। सुलेमानी व अन्य लोगों पर *2* दिन बाद हमला हुआ। ये घटनाएं दिखाती हैं कि अमेरिका और ईरान के बीच तनाव तेज होता जा रहा है और इसमें अमेरिका पहले से ज्यादा सैनिक रूप अपना रहा है। अमेरिका ईरान की तुलना में सैनिक रूप से कहीं ज्यादा ताकतवर है और इराक पर प्रभाव बढ़ाने की लड़ाई में वह हारता नजर आ रहा है। ट्रम्प प्रशासन ने जनरल सुलेमानी को निशाना बनाकर एक बहुत बड़ा जोखिम उठाया है। जाहिर है ट्रम्प प्रशासन ने यह कदम उसके जबरदस्त प्रभाव के लिए उठाया है परंतु यह जोखिम भरा कदम है। बेवकूफी की मिसाल इसी तरह की घटनाओं में मिलती है। न्यूयार्क टाइम्स में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार ट्रम्प ने यह कदम, जो अमेरिकी रक्षा प्रतिष्ठान पेन्टागन द्वारा प्रस्तुत विकल्पों में सबसे हिंसक था, में से चुना था। ट्रम्प प्रशासन का चाहे जो इरादा या गणित रहा हो वह मध्य पूर्व में अपने व अपने सहयोगियों के सामने आ रही कठिनाइयों को पार नहीं कर पाएंगे। समयान्तर से अपनाई गयी शिया-सुन्नी विभाजन की कार्यनीति भी अपना चक्र पूरा कर चुकी है और यहां ''लोकतंत्र'' का पर्दा भी काम नहीं आ सकता, क्योंकि अमेरिकी साम्राज्यवाद इस क्षेत्र में अपने प्रभाव के लिए शेखों व तानाशाहों पर निर्भर हैं।

अमेरिकी साम्राज्यवाद ने एक बहुत खतरनाक कदम उठाया है जो इस क्षेत्र में शांति को खतरे में डाल रहा है। इसकी प्रतिक्रिया की गति चाहे जो हो, ईरान व उसके सहयोगी शान्त नहीं बैठेंगे। इसका असर पूरे क्षेत्र पर पड़ेगा और इसका खामियाजा अमेरिकी समर्थकों व सहयोगियों को झेलना पड़ेगा। अमेरिकी साम्राज्यवाद इस क्षेत्र में अपने अलग-थलग पड़ने का हल गोली चलाकर नहीं निकाल सकेगा। बल्कि उसका अलगाव बढ़ेगा ही, म ध्य पूर्व में भी और पूरी दुनिया में भी। ट्रम्प प्रशासन द्वारा इस कदम को तय करने और इसके समय के चयन में वास्तव में ट्रम्प के सामने घरेलू संकट का भी प्रभाव रहा है, खासतौर से अमेरिकी संसद, प्रतिनिधि सभा, द्वारा उसके खिलाफ महाभियोग पारित करना और इसके सीनेट में तब लम्बित होना भी एक कारण रहा। यह इस बात को भी साबित करता है कि दुनिया भर में अमनी वर्चस्व को बनाए रखने की मुहिम के कारण अमेरिकी साम्राज्यवाद के सामने संकट बढ़ रहे हैं।

इराक के लोगों में उनके बिगड़ते हालात, बढ़ती बेरोजगारी और सिमटती नागरिक सुविधाओं के कारण गुस्सा बढ़ रहा है। यह उस देश में विशेष रूप से गौर करने योग्य है, जो दुनिया में तेल के सबसे बड़े निर्यातकों में से एक है। इन हालातों के लिए लोग शासक राजनीतिज्ञों के सर्वव्यापी भ्रष्टाचार को दोष दे रहे हैं। वे अपने प्रदर्शनों में अमेरिका व ईरान के बढ़ते प्रभाव के विरुद्ध नारे भी लगाते हैं। इन विरोध प्रदर्शनों में अभी तक *400* से अधिक लोग मारे जा चुके हैं। इन विरोध प्रदर्शनों के केन्द्र शिया बाहुल्य इलाके वाले दक्षिणी ईराक में स्थित हैं तथा ये क्षेत्र विरोध के मुख्य केन्द्र बनकर उभर आए हैं। ईरान व अमेरिका दोनो ही इन विरोधों की, जिनमें बड़ी संख्या में बेरोजगारी के खिलाफ युवा सड़क पर उतर आए हैं, दिशा को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहे हैं।

इराक के लोगों का अपने दैनिक जीवन के गिरते हालातों के विरुद्ध गुस्से का इजहार जिसमें दक्षिण इराक इस विरोध का मुख्य केन्द्र बन रहा है ने इराक के शासक तंत्र में दरारें बढ़ा दी हैं। जहां सरकार इस गुस्से के लिए बाथ समर्थकों को दोष दे रही है, विभिन्न शासक गुट एक दूसरे के विपरीत तथा ढुलमुल पक्ष ले रहे हैं, जो वर्तमान शासक ढ़ांचे को बनाए रखना भी चाहते हैं और लोगों के गुस्से का इस्तेमाल कर सत्ता में हिस्सा भी बढ़ाना चाहते हैं। लोगों के गुस्से के विस्फोट ने पहले ही प्रधानमंत्री महादी को इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर दिया है, पर शासक तंत्र के विभिन्न हिस्से नहीं चाहते कि वर्तमान शासन व्यवस्था विघटित हो जाए, जबकि यह आन्दोलनकारियों की मुख्य मांग है। यह आन्दोलन अमेरिका और ईरान के बीच बढ़ते अन्तर्विरोधों की प ष्ठभूमि में खड़ा हुआ है। इन विरोधों का भविष्य इस बात पर भी निर्भर है। अमेरिका व ईरान दोनो ही इनका इस्तेमाल कर इराक में अपने प्रभाव को बढ़ाने के प्रयास में लगे हैं।

अमेरिकी साम्राज्यवाद के उकसावे भरे कदम क्षेत्र में शांति को खतरे में डाल रहे हैं और ईराक के लोग उसके हमले के सीधे निशाने पर हैं। ईरान तथा अमेरिका के तेज होते अंतर्विरोध का सीधा असर इराक की जनता पर पड़ेगा।

पत्रिका के नियमित प्रकाशन के लिए सभी पाठकों से अनुरोध

- *कृपया पत्रिका की प्रतियों की राशि समय पर पहुंचाएं।*
- *पत्रिका के लिए लेख व रिपोर्ट नियमित रूप से भेजें।*
- *पत्रिका के ग्राहक बढ़ाने में सहयोग करें।*
- *पत्रिका के बारे में अपने सुझाव भेजें।*

सीएए, एनपीआर, एनआरसी के विरुद्ध जनाक्रोश

फासीवादी उत्तर प्रदेश सरकार के विषैले दाँत सामने आए

आशीष मित्तल

जैसे-जैसे पूरे प्रदेश में सीएए, एनपीआर, एनआरसी कानून के खिलाफ जनसंघर्ष फूटना शुरु हुआ, फासीवादी उत्तर प्रदेश सरकार के विषैले दाँत दिखने लगे। प्रदेश में इसकी शुरुआत एएमयू से हुई और *19* दिसम्बर के बाद से लेकर लगभग हर जिले में पुलिस तथा रैपिड एक्शन फोर्स का तांडव प्रदर्शनकारियों व मुस्लिम बस्तियों पर दिखा। इस बार किसी भी शहर में 'हिन्दुत्व' के नाम पर आरएसएस-भाजपा आम लोगों को गोलबंद नहीं कर सकी। इस बार का कुल हमला सरकार के सुरक्षा बलों और आरएसएस कार्यकर्ताओं ने किया जो नाम की पट्टी बिना लगाए पुलिस वर्दी में उनके साथ हमला करते घूम रहे थे।

मुसलमानों के आक्रोश के खिलाफ आरएसएस-भाजपा के जहरीले प्रचार और तिरंगा झंडा लेकर जनगोलबंदी करने के प्रयास लगभग हर शहर में असफल रहे। सांसदों व वरिष्ठ नेताओं की उपस्थिति में गोलबंद की गयी रैलियों में भागीदारी भी बहुत कम थी और उत्साह भी नहीं था। उनका सीएए के पक्ष में जनशिक्षा अभियान भी मुख्यतः समाचार पत्रों तक सीमित रहा है। हिन्दु बस्तियों के बीच उनकी कतारों के प्रचार का मुख्य बिन्दु भी यही रहा कि इस कानून से हिन्दुओं को कोई दिक्कत नहीं होगी, क्योंकि जो भी कागज हैं वे मान्य होंगे। शुरू में ये मुसलमानों को छांटने के मौके की बात कह रहे थे जो बाद में कम हो गया। ग्रामांचलों में कई जगहों पर सरकारी अधिकारी व पुलिस इस प्रचार में लगे हुए हैं और अब यह कह रहे हैं कि अगर कोई व्यक्ति व उसके माता-पिता वोट देते रहे हैं तो कोई दिक्कत नहीं आएगी।

दूसरी ओर सीएए-एनआरसी-एनपीआर के विरुद्ध किए गये सभी प्रदर्शनों में भारी संख्या में मुसलमानों की, विशेषकर महिलाओं की भागीदारी दिखी, जो कुछ जिलों में *50,000* से ऊपर भी पहुँची। इन विरोध सभाओं में अच्छी संख्या में जिलों के प्रगतिशील नागरिकों और खासतौर से वाम पक्ष वालों ने भाग लिया। पर यह भी बात सच है कि उ.प्र. में सरकार के आतंक के माहौल में बहुत सारे गैर मुस्लिम लोग इन प्रदर्शनों में खुलकर भाग नहीं ले रहे हैं। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रदेश के प्रमुख राजनीतिक दल विशेषकर सपा व बसपा तथा कांग्रेस, सीएए-एनपीआर-एनआरसी की विरोध सभाओं में व अलग से बयान तो कर रहे हैं, पर अपनी कतारों को आन्दोलन में उतारने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। समाज के कुछ प्रबुद्ध लोगों में यह भी भावना है कि योगी सरकार की चिन्हित करके बदला लेने की नीति के कारण वे सामने नहीं आना चाहते, वरना यह कानून तो गलत है।

प्रदेश में राज कर रही योगी आदित्यनाथ की सरकार की पुलिस व उसकी आड़ में आरएसएस कैडर के सुनियोजित व सिलसिलेवार हमलों, महिलाओं, बच्चों, व द्धों के साथ दुर्व्यवहार की दास्तानें रोंगटे खड़े कर देती है। साथ ही ये इस कानून को जबरदस्ती थोपने के आरएसएस-भाजपा सरकार के पक्के इरादे की ओर भी इशारा करती हैं। इन हमलों की एक संक्षिप्त समीक्षा स्थिति को समझने के लिए उपयोगी होगी।

एएमयू में हमला

छात्रों के प्रतिरोध को क्रूर रूप से कुचलने के लिए *13-14* दिसम्बर को ही भारी संख्या में हथियारबंद बल लगा दिया गया। आरएएफ और पुलिस ने भद्दी-भद्दी गालियां देते हुए परिसर के गेट के अंदर एकत्र, शांतिपूर्वक नारेबाजी कर रहे छात्रों की भीड़ पर आँसू गैस के गोले दागे, रबर बुलेट से फायरिंग की और विस्फोट से चौंकाने वाले स्टन ग्रेनेड दागे जो वस्तुओं को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होती हैं। फिर मुख्य द्वार को तोड़कर जमकर लाठीचार्ज किया और छर्रे वाली बन्दूकों से फायरिंग की। पूरे समय प्रॉक्टर व छात्र पुलिस से बाहर रहने का निवेदन करते रहे, पर वे परिसर की इमारतों में छिपे छात्रों को ढूंढ़-ढूढ़ कर उनकी पिटाई करने में जुटे रहे, उनकी भी जो प्रदर्शन में शामिल नहीं थे। *60* से अधिक छात्र घायल हुए, उनके हाथ-पैर में गम्भीर चोटें आईं। *22* छात्र कई दिन तक लापता रहे। इमारतों के पास खड़े कई वाहन नष्ट कर दिये गये और धमकी दी गई कि जो विरोध करेगा उसे रासुका में बंद कर दिया जाएगा। पुलिस ने खिड़कियों से छात्रावास के कमरों में भी आंसू गैस दागकर उनकी किताबें, कम्प्यूटर व सम्पत्ति नष्ट की। शासन तंत्र निहत्थे छात्रों के साथ युद्ध की मुद्रा में था।

जनवादी अधिकारों का हनन

पूरे प्रदेश में एक साथ सीआरपीसी की धारा *144* लगाकर जन प्रदर्शनों पर रोक लगा दी गयी, जबकि इस कानून का प्रयोग सीमित क्षेत्रों में व सीमित समय तक विशिष्ट कारणों से ही होना चाहिए। लखनऊ व अन्य शहरों में मानवाधिकार संगठनों के कई महत्वपूर्ण कार्यकर्ताओं को घरों में नज़रबंद कर दिया तथा बाद में इन्हीं में से कई महत्वपूर्ण लोगों को हिंसा भड़काने के आरोप में जेल में डाल दिया गया और हत्या का प्रयास (*307*) तथा अपराधिक षडयंत्र (*120*बी) की धाराएं लगा दीं। इनमें से कई *75* वर्ष से ज्यादा उम्र के लोग हैं। बनारस व कई अन्य शहरों में शांतिपूर्वक धरने पर थोड़ी संख्या में भी बैठे लोगों को जेल में डाल दिया गया तथा हफ्तों तक जमानत नहीं होने दी गई। कई ऐसे लोगों को थाने में कई दिनों तक बिना एफआईआर लिखे अवैध रूप से रखा गया। इसी तरह से कई पत्रकारों को, बाहर से आए व स्थानीय वकीलों को, विशेषकर मुस्लिमों को। पुलिस थानों में जाकर गिरफ्तार लोगों के बारे में पूछताछ करने वाले रिश्तेदारों को प्रताड़ित किया गया। युवा विशेष तौर पर इसके शिकार रहे और कई स्थानों पर महिलाओं व बच्चों की भी पिटाई की गई तथा बच्चों को भी जेल में भेज दिया गया।

हर जिले में गिरफ्तार किये गये लोगों की संख्या कई हजारों में है। इन पर लगाये गये आरोपों में *120* बी-अपराधिक षडयंत्र, *141*-गैरकानूनी रूप से एकत्र होना, *147*-दंगा, *148*-हथियारों के साथ दंगा, *149*-गैरकानूनी भीड़, *152*-दंगा रोकने आए अधिकारियों पर हमला, *188*-अफसर द्वारा दिये आदेश का उल्लंघन, *307*-हत्या की कोशिश, *323*-हिंसा, *332*-ड्यूटी कर रहे अफसर पर हिंसा, *340*-गैरकानूनी बंदी बनाना, *353*-अफसर पर अपराधिक हमला, *427*-सम्पत्ति पर हमला, *435*-विस्फोटक पदार्थ से हमला, *436*-भवन विध्वंस करना, *504*-शांति भंग करने के लिए उकसाने के लिए अपमान करना, *506*-अपराधिक प्रताड़ना, सार्वजनिक सम्पत्ति कानून की धाराएं और *7* क्रिमिनल लॉ अमेन्डमेंट एक्ट, आदि तथा सोशल मीडिया पर आपत्तिजनक पोस्ट की धाराएं लगी हैं। एक-एक जिले में *15* से *20* एफआईआर हैं और नामित आरोपियों के अलावा हर जिले में बीसियों हजार लोग अन्य में शामिल किये गये हैं। इस तरह से गिरफ्तार करके थाने बुलाए गये लोगों को शारीरिक यातनाएं दी गयीं। *16* दिसम्बर से *21* जिलों में इंटरनेट सेवाएं बंद कर दीं गईं व पूरे प्रदेश में इसकी गति मंद कर दी गई। इसका कोई कारण सरकार ने स्पष्ट नहीं किया। इसका दुष्प्रभाव प्रदेश में इंटरनेट आधारित व्यापार पर भी पड़ा।

प्रदर्शनों पर हमले

इस दमन के बावजूद प्रदेश में भारी संख्या में हुए जनता के प्रदर्शनों पर पुलिस व पुलिस वर्दी में निजी गुण्डों ने हमले किये, जिसमें उन्होंने लोगों पर पत्थर फेंके, सड़कों पर खड़े वाहनों के शीशे व वाहन तोड़े, उनमें कुछ में आग लगाई, बिना चेतावनी दिये निशाना लगाकार लोगों को मारने के इरादे से गोलियाँ चलाई, जिनमें *23* लोग मारे गये। इनमें सभी मुसलमान हैं। ज्यादातर प्रदर्शनों पर हमले की शुरुआत पुलिस ने की। कई मुस्लिम इलाकों में घर में घुसकर घर के सामान तोड़े गये, और छिपे हुए बूढ़े, महिलाओं और बच्चों की पिटाई की गई। मुजफ्फरनगर में स्थानीय सांसद संजीव बालियान के नेत त्व में ये हमले आयोजित हुए। कई जगह पुलिस को हाथ-पैर तोड़ देने के निर्देश देते हुए भाजपा के स्थानीय नेताओं के वीडियो सामने आए हैं। जन प्रदर्शनों के वीडियो दिखाते हैं कि प्रदर्शन कर रहे लोग न तो हथियार लिये हुए थे और न ही वे हिंसक थे। लोगों की ओर से पुलिस के आक्रमण के बाद अधिकतम प्रक्रिया कहीं-कहीं पत्थर चलाने की थी अथवा भाग जाने की थी, जो घटना के बाद घटना स्थल पर मिले भारी संख्या में जूते-चप्पलों से भी स्पष्ट है। इन हमलों में मारे गये कई लोगों के रिश्तेदारों पर दबाव देकर तुरंत ही लाश दफन कराई गयी। पोस्टमार्टम की रिपोर्टें भी रिश्तेदारों को नहीं दी गयीं हैं और जब उन्होंने पुलिस द्वारा की गयी हत्या की शिकायतें लिखवाने का प्रयास किया तो उनके साथ बदसलूकी की गई।

पुलिस प्रशासन की प्रतिक्रिया

डीजीपी उत्तर प्रदेश ने पुलिस फायरिंग में प्रदर्शनकारियों की हत्या से लगातार इंकार करते हुए कहा कि पुलिस ने एक भी गोली नहीं चलाई। बाद में बिजनौर व कानपुर में वीडियो वायरल होने के बाद इन घटनाओं को उन्होंने माना। उनका कहना था कि प्रदर्शकारियों के बीच से गोली चलने से मौत हुई है और पुलिस वाले भी घायल हुए हैं, जबकि एक भी पुलिस वाले को कोई भी अग्नेयास्त्र का घाव नहीं हैं। कई स्थानों पर पुलिस ने आपत्तिजनक साम्प्रदायिक बातें लोगों को कहीं। मेरठ के पुलिस अधीक्षक का कहना था, 'कहां जाओगे, इस गली को मैं ठीक कर दूंगा, ... ये जो काली-पीली पट्टी बांधे हुए हैं, इनसे कह दो पाकिस्तान चले जाओ, ... ये गली मुझे याद हो गयी है'।

योगी आदित्यनाथ द्वारा पुलिस हिंसा को उकसावा

प्रदर्शन शुरु होते ही, *19* दिसम्बर को, प्रदर्शनकारियों को देशद्रोही, दंगाई, घोषित कर योगी आदित्यनाथ ने बदला लेने की घोषणा कर दी थी, जो 'वफादार' पुलिस द्वारा की गई कार्रवाईयों का एक बड़ा कारण रहा। योगी का कहना था कि 'हर दंगाई रोएगा, क्योंकि अब योगी सरकार सत्ता में है'। उन्होंने सारे नुकसान की वसूली दंगाईयों से करने की कई बार खुली घोषणा की।

पुलिस ने कई जिलों में सैकड़ों लोगों को सम्पत्ति नष्ट होने के नुकसान की वसूली के नोटिस भी दिये और *30* दिन की समयावधि देकर कई जगह वसूली कर भी ली है। इन मामलों में ना तो सम्पत्ति के नुकसान का स्पष्ट ब्यौरा है, ना ही उस तथाकथित घटना में शामिल होने का कोई सबूत है और न ही आरोपियों को कोई सुनवाई या सफाई का मौका दिया गया। कई जगह जहां पुलिस का विरोध किया गया वहां दंगे में शामिल होने का आरोप लगाकर पुलिस ने लोगों की दुकानें भी सील कर रखी हैं। योगी सरकार ने ये सारे कदम चुन-चुनकर मुस्लिमों के विरूद्ध ही उठाये हैं।

पुलिस द्वारा प्रदर्शनकारियों, मुस्लिम इलाकों में दुकानों, घरों, वाहनों पर हमलों की कई सारी वीडियो रिकार्ड का सोशल मीडिया पर प्रचार हुआ है, जो पुलिस की घ णित बयानबाजी व जनविरोधी अपराधिक हमलों को साबित करते हैं।

सरकार दमन में कुछ पीछे हटने को बाध्य हुई

यदि योगी सरकार को इस हमले से कुछ पीछे हटना पड़ा तो इसका बड़ा कारण है कि आरएसएस-भाजपा अपने पक्ष में हिन्दुओं की गोलबंदी नहीं कर पायी और देश भर में मुस्लिम समुदाय के लोग, खासतौर से महिलाएं तथा उनके साथ काफी बड़ी संख्या में प्रगतिशील विचारों से प्रेरित और फासीवादी राज के विरोधी हिन्दु समुदाय के लोग भी, शाहीन बाग की तर्ज पर सड़कों पर उतर कर प्रदर्शन करने लगे व पार्कों में बैठने लगे। इसमें एक महत्वपूर्ण पक्ष असम और पूर्वोत्तर राज्यों में जनता द्वारा की गयी लगभग पूरी नाकेबंदी का भी है। इसी के साथ कई समाचार पत्रों और कई टीवी चैनलों में भी आरएसएस-भाजपा की आलोचनाएं प्रमुखता से आने लगी हैं और शासक वर्ग के विरोधी दलों ने भी पुलिस दमन के विरुद्ध और इन कानूनों के विरोध में पक्ष अपनाना शुरु कर दिया। कुछ राज्य सरकारों ने इन पर अमल न करने की घोषणाएं भी कीं। इसमें देश में कुछ प्रांतों में चुनावों में हार का सामना करने का पक्ष भी एक पहलू है।

जो मोदी, अपनी 'मुस्लिम बहनों' की 'रक्षा' में टीवी चैनलों पर आंसू बहाते थकते नहीं थे और आरोप लगाते थे कि इस्लाम धर्म में उन्हें बंधन में रखा हुआ है, इस संघर्ष के बढ़ने के साथ उनके आंसू सूख गये, वे रोना भूल गए। योगी शिकायत करने लगे कि मुसलमानों ने अपनी औरतों को सामने कर दिया है, खुद रजाई में सो रहे हैं। योगी तो कई बयान दे चुके हैं कि आजादी का नारा लगाने वाले देश के टुकड़े-टुकड़े करना चाह रहे हैं, जबकि जनता आरएसएस से आजादी की मांग कर रही है ताकि वह समाज के टुकड़े-टुकड़े ना कर सके। मोदी व अमित शाह कई बार शांति से प्रदर्शन पर बैठी महिलाओं को 'आतंकवादी' की श्रेणी में गिना चुके हैं, यह कहकर कि विपक्ष को आतंकवादियों का समर्थन नहीं करना चाहिए। जाहिर है वे इन बढ़ते हुए शांतिपूर्वक धरनों तथा इनमें जनता की भागेदारी से काफी आतंकित हैं। यह असर महिलाओं के आन्दोलन का है।

इटावा में *21* जनवरी को शांतिपूर्ण धरने जिसमें बड़ी संख्या में महिलाओं की हिस्सेदारी थी, पर लाठी चार्ज किया गया। अत्यधिक

(शेष प ष्ठ 8 पर)

केन्द्रीय बजट 2020 – 21 : किसानों व ग्रामीण अर्थव्यवस्था के साथ विश्वासघात

भालचन्द्र षडंगी

वित्तमंत्री द्वारा *1* फरवरी *2020* को प्रस्तुत केन्द्रीय बजट *2020-21* मोदी नेत त्व वाली भाजपा-आरएसएस सरकार की विनाशकारी नीतियों का जारी रुप है और उसने बेरोजगारी, बढ़ती मंहगाई, कृषि संकट और तेजी से गिरती ग्रामांचल में मजदूरी से ग्रसित आम जनता को कोई राहत नहीं दी है। बजट भाषण जुमलों और वाकपटुता से भरा हुआ था और उसमें जनता की घटती क्रय क्षमता, विशेषकर ग्रामीण उपभोग को सम्बोधित करने का कोई ठोस कदम नहीं था। उसने किसानों मजदूरों व मेहनतकश जनता की आमदनी सुनिश्चित कर जनता के हाथ में पैसा पहुँचाने तथा इसके द्वारा आर्थिक मंदी को हल करने के अवसर का इस्तेमाल नहीं किया।

हालांकि वित्तमंत्री ने अपने बजट भाषण में बार-बार कहा कि सरकार का लक्ष्य *2022* तक किसानों की आमदनी, *2015* की आमदनी से दोगुना कर देने का है, उन्होंने इस बहुप्रचारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की। अंत में बिना किसी नीतिगत सहयोग और वित्तीय आबंटन के यह केवल एक जुमला नजर आता है और इसे अगले *2* सालों में पूरा कर पाने की संभावना ही नहीं है। बल्कि सच यह है कि बजट के प्रस्ताव खेती के संकट को और बढ़ा देंगे।

आर्थिक मंदी की इस प ष्ठभूमि में ऐसी उम्मीद की जा रही थी कि ग्रामीण रोजगार योजना, खाद्यान्न छूट, आश्वस्त सिंचाई और फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकार काफी पैसा आबंटित करेगी, ताकि ग्रामीण मांग व उपभोग बढ़ना शुरु हो जाए। पर बजट में घोषित प्रस्ताव किसानों की आमदनी, बचत, खाद्यान्न सुरक्षा तथा रोजगार की स्थिति को नहीं सुधारेंगे। आंकड़ों के अनुसार *2011-12* की तुलना में, ग्रामीण इलाकों में उपभोग पर प्रति व्यक्ति मासिक खर्च *2017-18* में *8.8* फीसदी घट गया है।

खेती का कारपोरेट 'विकास'

वित्तमंत्री ने कृषि क्षेत्र में उदारीकरण की दिशा को जारी रखते हुए *16* सूत्रीय योजना प्रस्तुत की है जिससे खेती में बड़े कारपोरेट का हस्तक्षेप व खेतों पर कब्जा और बढ़ जाएगा।

बजट भाषण में वित्तमंत्री ने न केवल कृषि संकट को हल करने का कोई कदम नहीं सुझाया उन्होंने कृषि क्षेत्र में विदेशी कम्पनियों व बड़े कारपोरेट के निवेश को बढ़ाने के प्रस्ताव पेश किए। इनमें लागत की आपूर्ति, फसलों की खरीददारी, भंडारण, खाद्यान्न प्रसंस्करण, बीमा तथा फसलों की बिक्री आदि सभी क्षेत्रों में सरकार ने कारपोरेट निवेश को बढ़ाने के प्रस्ताव दिये हैं। हमारे किसान समुदाय को मंहगी लागत के दाम, फसलों के कम दाम, मजबूरी में बेहद कम दाम पर बिक्री, कर्जदारी, फसलों का नुकसान और कृषि उत्पादन की सुविधाओं में कमी से कोई राहत नहीं दी गयी है।

बजट में वित्तमंत्री ने उन राज्यों को सहयोग देने की बात कही है जो भूमि किराए पर देने, किसानों के उत्पादन व पशुपालन तथा ठेका खेती में केन्द्रीय कानून के प्रारूप को अमल करेंगे और उन्हें भी जो बिक्री, खाद्यान्न प्रसंस्करण, भंडारण व परिवहन में निवेश कराएंगे। उसका प्रस्ताव है कि हर जिले में बिक्री व निर्यात के लिए झुंड में खेती कराई जाए। इसके अलावा सूखी जमीनों पर सोलर बिजली उत्पादन के लिए जमीनें व्यवसायिक रूप से कम्पनियों को दी जाएंगी। ये सब किसानों को कारपोरेट की दया पर खड़ा कर देगा। ये कम्पनियों द्वारा उनके शोषण को बढ़ाएगा जो उनकी जमीन किराए पर लेकर, उन्हें कर्ज में फंसाकर, उनकी फसलें सस्ते दाम पर लेकर और उनका खाद्यान्न प्रसंस्करण कर उन्हें बेचकर भारी मुनाफा कमाएंगे। बहुप्रचारित किसान रेल व किसान उड़ान किसानों की आमदनी बढ़ाने में कोई योगदान नहीं करेंगी, क्योंकि किसान एक बार जब अपनी फसल बेच देता है, वह व्यवसायी की या कम्पनी की सम्पत्ति बन जाती है और फिर वह तय करती है कि उसे बेचा जाए या निर्यात किया जाए। इसकी आमदनी या घाटा उसे होता है, किसान को नहीं। ये दोनो प्रस्ताव आकर्षक नजर आ सकते हैं पर हमारे किसानों को इनसे कोई लाभ नहीं होगा।

किसानों की आमदनी व ग्रामीण मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा वाली पेंशन, सिंचाई और डीजल, बिजली, बीज व खाद जैसी लागत के दाम घटाने के लिए कोई प्रस्ताव नहीं दिया है। बजट में भूमिहीन किसानों, कृषि मजदूरों, बंटाईदारों की चिंताओं को भी सम्बोधित नहीं किया गया है बल्कि खाद पर सब्सिडी घटाए जाने से लागत के दाम और बढ़ेंगे।

वित्तमंत्री द्वारा एक और बड़ी समस्या को नजरंदाज किया गया है, वह है एक फसल उगाए जाने से मोनोकल्चर के कारण पर्यावरण व पारिस्थिति को होने वाला नुकसान। निजी कम्पनियां कभी भी पर्यावरण की रक्षा नहीं करतीं क्योंकि उनका लक्ष्य केवल मुनाफा कमाना होता है। खेती में इनके हस्तक्षेप से बीज की सुरक्षा तथा जैविक विधिता भी नष्ट होगी। वित्तमंत्री ने इस पर बोलते हुए कहा कि वे महिला समूहों द्वारा बीज के भंडारण व बिक्री को बढ़ावा देंगी और इस योजना को इन्होंने 'धनलक्ष्मी' बताया। जब सरकार खुद ही जीएम बीज को और बीज की कम्पनियों को बढ़ावा दे रही है तो यह प्रस्ताव केवल ध्यान भटकाने के लिए है।

खेती व ग्रामीण विकास पर आबंटन

खेती व ग्रामीण विकास क्षेत्र पर बजट में किया गया आवंटन दिखाता है कि सरकार इसकी गम्भीरता को नहीं समझ रही है। *2020-21* में खेती, सम्बन्धित क्षेत्र व सिंचाई के लिए *1.58* लाख करोड़ रुपये दिये गये हैं जो कुल बजट खर्च के *30.4* लाख करोड़ रूपए का *5.2* फीसदी है। वर्ष *2019-20* में इस क्षेत्र को *1.52* लाख करोड़ रूपये दिये गये जो उस साल के बजट खर्च का *5.45* फीसदी था। ग्रामीण विकास के नाम पर दिया गया खर्च जोड़ा जाए तो इस वर्ष यह कुल खर्च का *9.3* फीसदी है, जबकि पिछले साल यह *9.8* फीसदी था।

सरकार ने बजट में खेती, सिंचाई व ग्रामीण विकास के लिए दिया गया *2.83* लाख करोड़ रूपये पिछले साल के *2.68* लाख करोड़ से मात्र *15000* करोड़ रूपये यानी *5.6* फीसदी ज्यादा है, जो कि महंगाई दर से भी कम है। ग्रामीण विकास की जो विशिष्ट योजनाएं हैं उन पर इस साल का खर्च पिछले साल के *1.22* लाख करोड़ रुपये से घटाकर *1.2* लाख करोड़ कर दिया गया है।

खाद की छूट में इस साल *11* फीसदी कटौती की गयी है और इसके लिए *71,309* करोड़ रुपये दिये गये हैं। यह निश्चित तौर पर खेती की लागत बढ़ाएगा। ईंधन के लिए *40,918* करोड़ रुपये दिये गये हैं जो पिछले साल दिये गये *38,568* करोड़ रूपए से *6* फीसदी ज्यादा है और यह भी मंहगाई दर से कम है। इनके दाम में व द्धि खेती की लागत और घरेलू जीवन को और संकट में ला देगी और ग्रामीण आकांक्षाओं को दबा देगी।

ग्रामीण बेरोजगारी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रति सरकार का लापरवाह रवैया इस बात से समझा जा सकता है कि मनरेगा के आवंटन में भारी कटौती की गयी है। ग्रामीण इलाकों में घटती मजदूरी दर और मांग के द ष्टिगत सरकार मनरेगा के माध्यम से ग्रामांचल में पैसा डाल सकती थी, जिससे रोजगार भी बढ़ता और जनता की जेब में कुछ ज्यादा धन जाता। मनरेगा में दी जाने वाली मजदूरी भी पिछले सालों में बाजार की मजदूरी दर से बहुत कम रही हैं और सरकार इसे बढ़ाकर ऐसे हालात बना सकती थी जिसमें ग्रामीण मजदूरी बेहतर हो जाए और संकटग्रस्त हालात में शहर भागना घट जाए। पर खेद का विषय है कि सरकार ने इसके प्रति कोई संवेदना नहीं दिखाई है और इस मद में आवंटन को *13* फीसदी घटा दिया है। मनरेगा में पिछले साल *71,002* करोड़ रूपये खर्च किया गया था जो इस साल घटाकर *61,500* करोड़ रूपए कर दिया गया है। महत्वपूर्ण है मनरेगा में राज्यों से जो मांग आयी थी वह कुल मिलाकर *1* लाख करोड़ रूपए की थी पर सरकार ने इसका केवल *60* फीसदी आवंटित किया है।

कृषि की एक और प्रचारित योजना प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना है पर इस साल इस पर कोई ध्यान केन्द्रित नहीं रहा। हालांकि सरकार ने इसका आवंटन कुछ बढ़ाया है, इसके अमल से जुड़ी समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया है। यह किसानों को बहुत सीमित ही लाभ देती है, क्योंकि उनके दावों का भुगतान महीनों बाद किया जाता है। पिछले *3* सालों में निजी कम्पनियों ने फसल बीमा से *18,830* करोड़ रुपये कमाए हैं, जबकि किसानों की पीड़ा बढ़ी है।

किसानों के देशव्यापी आन्दोलनों के कारण सरकार ने पिछले साल पीएम आशा योजना शुरु की थी जिसमें न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम दाम पर फसल बेचने की मजबूरी की भरपायी के लिए आवंटन किया गया था। हालांकि इस मद में *75,000* करोड़ रूपये की मांग थी, सरकार ने *2018-19* में इस पर केवल *4,100* करोड़ रुपये खर्च किया और वर्ष *2019-20* में इसका आवंटन घटाकर *1500* करोड़ रुपये कर दिया और इस साल इसे और घटाकर *500* करोड़ रूपये कर दिया। यह तब किया जा रहा है जब एक व्यर्थ जनसांख्यिकी रजिस्टर बनाने पर सरकार *4000* करोड़ रूपये खर्च करने जा रही है।

लम्बे समय से किसान संगठन किसानों की सम्पूर्ण कर्जमाफी और कर्ज की समस्या से राहत देने की मांग करते रहे हैं। परन्तु इस पर कोई कदम उठाने की जगह सरकार ने किसानों को दिये जाने वाले उधार की सीमा बढ़ाकर *15* लाख करोड़ रूपये कर दिया। इससे कभी भी किसानों की आमदनी नहीं बढ़ेगी, बल्कि यह मंहगी लागत के सामान व कम्पनियों द्वारा उत्पादित कृषि मशीनरी की खरीददारी बढ़ाएगा। हमें याद रखना चाहिए कि अभी हाल ही में सरकार ने बड़े पूंजीपतियों *2* लाख करोड़ रुपये के कर्ज माफ कर दिये थे और *1.45* लाख करोड़ रूपये की उन्हें टैक्स में छूट दी थी।

पीएम किसान योजना जिसमें साल भर में *2000* रुपये की *3* किश्तें देनी थीं, को सुधारने के लिए भी कोई प्रस्ताव नहीं है। पिछले साल *14.5* करोड़ किसान परिवारों में से केवल *26.6* फीसदी को तीनों किश्तें दी गयीं, *44* फीसदी को दो किश्तें दीं, *52* फीसदी को *1* किश्त दी और *48* फीसदी को कुछ भी नहीं दिया गया। खेती की लागत के दाम पिछले *5* सालों में *33* से *100* फीसदी बढ़ गये हैं और जीवन चलाने का खर्च दोगुने से ज्यादा हो गया है। वर्ष *2019-20* में सरकार मार्च *2020* तक इस मद में *54,000* करोड़ रूपये खर्च करने की उम्मीद रखती है, जबकि आवंटन *75,000* करोड़ रूपये था। इस साल भी उसने *75,000* करोड़ रूपए आवंटित किये हैं। बजट भाषण अमल की कमी को सम्बोधित नहीं करता।

यह बजट यह दिखाता है कि सरकार की खाद्यान्न सुरक्षा और सबके पोषण को सुनिश्चित कर सबको सम्मानजनक जीवन देने की गारंटी के सिद्धान्त पर कितनी कम प्रतिबद्धता है। वर्ष *2019-20* में सरकार ने खाद्यान्न सब्सिडी पर *1,84,220* करोड़ रुपये आबंटित किये थे, जबकि उसने केवल *1,15,559* करोड़ रुपये खर्च किये। जहां बड़ी संख्या में लोग गम्भीर गरीबी के शिकार हैं और खाने के दाम तेजी से बढ़ रहे हैं, जिसके कारण भूख से हुई मौतें व कुपोषण भी बढ़ रहा है, सरकार ने इस साल में इस मद में *70,000* करोड़ रुपये की कटौती कर दी। *2019* की यूनीसेफ की रिपोर्ट के अनुसार भारत में आधे से ज्यादा बच्चे कुपोषण के शिकार हैं, *35* फीसदी कम कद के हैं और *17* फीसदी बहुत कम वजन के। हाल में जो विश्व में भूख की *119* देशों की सूची जारी की गयी उसमें भारत का दर्जा *95*वें पायदान से घटकर *112*वें पायदान पर पहुँच गया है। *2020-21* के बजट में भी इस आवंटन को और घटाकर *1,08,668* करोड़ रुपये कर दिया है जो पिछले साल के आवंटन से *37* फीसदी कम है। यह देश भर के उन *79* करोड़ लोगों के खाने में छूट देने के लिए अपर्याप्त है, जो अपने रोज के खाने के लिए राशन पर निर्भर हैं। पिछले *6* माह से खाने की महंगाई तेजी से बढ़ती गयी है तब भी सरकार ने ऐसा किया है।

ऐसा ही हाल मिड-डे मील योजना का है। इस राष्ट्रीय स्कूली भोजन योजना का मकसद था कि स्कूल जाने वाले बच्चों के पोषण को सुधार दिया जाए, पर इसके लिए आवंटन नहीं बढ़ाया गया है। पिछले साल की तरह इस साल भी आवंटन *11,000* करोड़ रुपये है, जबकि इसमें महंगाई का असर भी पड़ेगा। पिछले साल भी सरकार ने आवंटित पैसे में से केवल *9,912* करोड़ रुपये खर्च किये थे।

अन्य जनपक्षधर नीतियों की तरह आंगनबाड़ी योजना में बजट के आबंटन में *10.7* फीसदी की कटौती की गयी है और *19834* करोड़ की तुलना में इस साल केवल *17,704* करोड़ रुपये दिये गये हैं।

केन्द्र द्वारा करीब *3.3* करोड़ व्यक्तियों को पेंशन देने में सहयोग दिया जाता है और इसमें केन्द्रीय सहयोग की सीमा केवल *200* करोड़ रुपये है, जो *2006* में *150* रुपये से बढ़ाई गई थी। समाज के सबसे असुरक्षित तबकों - व द्धों, विधवाओं व विकलांगों - दिया गया यह सहयोग एक मजाक के बराकर है। कम से कम *5000* रुपये प्रतिमाह की व द्धा पेंशन दिया जाना जरूरी है पर सरकार इसमें भी लोगों से इस योजना में पैसा निवेश करने का प्रचार कर रही है।

(शेष प ष्ठ 6 पर)

मनुवादी, मुस्लिम विरोधी फासीवाद के खिलाफ उठीं भारत की महिलाएं

अगर भारत का इतिहास पित सत्तात्मक नजरिये से न लिखा जाए तो इस समय को महिलाओं के नाम पर लिखा जाएगा। आन्दोलन में भागीदार महिलाएं और लड़कियां- जो विश्वविद्यालयों से विरोध में निकलते छात्रों के अगली कतारों में हैं, जो सड़कों को रात में भी रंगों से भर रही हैं, जो दादियां सड़कों पर विशाल धरनों का रात-दर-रात नेत त्व कर रही हैं, दिल्ली के राज्यपाल से वार्ता करने जाती हैं; मुस्लिम परिवारों की घरेलू महिलाएं जो अपने घरों के कामों को भी चला रही हैं और अनंतकालीन धरनों को भी; छात्राएं जो बैरिकेडों पर चढ़ भी रही हैं और उन्हें लांघ भी रही हैं।

यह भी लिखा जाएगा कि जिस सवाल को लेकर महिलाएं सड़कों पर उतरीं, वो केवल महिला अधिकारों का नहीं था। वो निकली हैं अपने और अपने बच्चों के लिए 'भारत' के विवरण की रक्षा करने के लिए, व उसकी व्याख्या करने के लिए भी। वो मनुवादियों के आक्रमण का विरोध कर रही हैं, जो भारत को 'हिन्दु राष्ट्र' परिभाषित करने की चेष्टा में हैं।

अतः उनके विचार आरएसएस के बिल्कुल विरुद्ध हैं। वे तमाम जातिवादियों, हर तरह के कठमुल्लावादियों, व पित सत्तात्मक विचारों के लिए भी सिरदर्द भी हैं और बुरे सपने की तरह भी। देश भर में धारा *144* तोड़ने के आरोप में महिलाओं के खिलाफ प्राथमिकियाँ (एफआईआर) दर्ज हो रहे हैं; वे पुलिस बर्बरता का, पुलिस द्वारा गाली-गलौच का शिकार हैं। जब वे बोलती हैं, वे विविधता के अधिकार को दोहराती हैं, अपने बच्चों के लिए भविष्य बचाने की बात करती हैं, अपनी मात भूमि पर अपना अधिकार जताती हैं।

दिल्ली और दूसरे शहरों में आरएसएस केन्द्र सरकार के इशारों पर विरोध करते छात्रों और जनता पर पुलिस दमन न केवल हजारों संघर्षशील महिलाओं को प्रदर्शनों में सड़कों पर लाता है, परन्तु उन महिलाओं को भी जो रात-दर-रात पुलिस दमन के वीडियो बनाती हैं, छोटे बच्चों को घर छोड़ महिला वकील पूरी रात थानों के दरवाजे खटखटाती हैं और कानून को संघर्षों की सेवा में लाने की चेष्ठा करती हैं। हिन्दुत्व की हमलावर ताकतों ने सोचा था कि देश बेचने के रास्ते व हिन्दु राष्ट्र स्थापित करने के रास्ते में सभी अड़चनों को दबोच लिया है - सत्ता हाथ में है, न्यायालय दब्बू, संस्थाएं चुप कराई जा चुकी हैं, काले कानून स्थापित हैं, कर-प्रणाली जन विरोधी व विरोध-विरोधी हथियार बना ली गई है, मीडिया तो बड़े पूंजीपति घरानों के हाथों में सुरक्षित है। परन्तु मालूम होता है कि उन्होंने उच्च शिक्षा संस्थानों के छात्रों की हिम्मत को नहीं आंका; महिलाओं पर तो मनुवादियों ने ध्यान भी नहीं दिया होगा।

भारत की महिलाएं, जो इतने स्तरों पर पित सत्ता के खिलाफ लड़ ही रही हैं - अब देख रही हैं कि मुनवादी, पित सत्तात्मक, साम्प्रदायिक जातिवादी समाज की खुली वकालत भी जारी है और उसे नंगे रूप में घोषित किया जा रहा है; लैंगिक समानता और जन-समानता, विविधता के अधिकार - इनको खुलेआम नकारा जा रहा है। यह उन्हें कबूल नहीं।

महिलाओं ने धारा *370* हटाने का सर्वप्रथम विरोध किया

सभी चर्चा कर रहे हैं कि महिलाएं, विशेषकर मुस्लिम महिलाएं व उच्च शिक्षा संस्थानों की छात्राएं सीएए, एनआरसी, एनपीआर के विरोध में आगे हैं। पर इस बात पर गौर नहीं हो रहा कि कश्मीर की जनता पर हमले और धारा *370* रद्द करने के विरुद्ध भी सबसे पहले महिलाएं सामने आई थीं। वे थीं संगठित महिलाएं। सबसे पहले टीमें जो चुपचाप कश्मीर घाटी में गईं, गावों में घूमीं और वहां की जनता के - विशेषकर महिलाओं और बच्चों के - अुनभवों को बाकी देशा को सुनाने लाईं, वे विभिन्न महिला संगठनों की टीमें थीं। सबसे पहले जन विरोध कार्यक्रम इन सवालों पर, महिला संगठनों के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने दिल्ली और अन्य शहरों में आयोजित किये। धीरे-धीरे ये आम विरोध कार्यक्रमों में तब्दील हुए। ये महिलाएं, विभिन्न प्रगतिशील और जनवादी विचारधाराओं से थीं, न कि केवल अल्पसंख्यकों से। इस भूमिका को कई बार भुला दिया जाता है, जब आरएसएस के हिन्दु राष्ट्र थोपने के कार्यक्रम के विरुद्ध महिलाओं की भूमिका की प्रशंसा की जाती है।

कौन लड़ाई में है?

केवल मुलिस महिलाएं संघर्ष में नहीं हैं, हालांकि निरंतर धरनों में वे बहुमत में हैं। इनके इर्द-गिर्द कई-कई सौ छात्राएं व महिलाएं एकत्रित होती हैं और वे विविध हैं। इसके अलावा महिलाएं छात्र प्रदर्शनों के, जनमोर्चों के, रैलियों के, संस्थानों के विरोध प्रदर्शनों के अगली कतारों में भी हैं, व जन का बड़ा भाग भी। वे इस आन्दोलन में भारत के शहरों की सड़कों पर सब जगह हैं - ये रात-दर-रात सड़कों पर सो रही हैं; ये महिलाएं जिनमें से अधिकतर ने अकेले कभी घर की दहलीज लांघी ही नहीं। हिन्दू राष्ट्र के थोपे जाने के खिलाफ देशभर के विरोध में, जनवादियों, प्रगतिशील लोगों, अल्पसंख्यकों, दलितों, छात्रों और महिलाओं की धाराएं साथ सम्मिलित हो गई हैं, और आन्दोलन के इस तूफान में कितनी पित त्तात्मक मान्यताएं बस उड़ कर गिर गई हैं। जब पुलिस लाठियां बरसाती है, चोटिल छात्राएं उन्हें गुलाब का फूल देती हैं, या राष्ट्रीय गान गाकर उनके कदम रोक देती हैं, या ऊँगली दिखाकर - आंखों मिलाकर उन्हें गुस्सा करती हैं। महिलाएं हाथ पकड़कर जंजीर बनाकर पुलिस दमन से सभाओं को बचाती हैं, विरोध जताते हुए खुद मर्द पुलिस से पिट जाती हैं, जलील की जाती हैं, धक्का-मुक्की में गिर जाती हैं - पर वापस सारे शहरों में फैली हैं, गीत गाते हुए, आजादी मांगते हुए, सिर उठाए हुए।

आर्थिक संकट

ऐसा क्यों हो गया है? लगातार गहराता आर्थिक संकट, गायब होती नौकरियां, बढ़ती महंगाई, उन नीतियों का फेल होते दिखना, जो भारत बेचने को विकास बता रही थीं - ये सब भगवा का रंग कुछ फीका कर रही हैं। आरएसएस व मोदी की बातों से विश्वास हटा रही हैं। आरएसएस अपने सामाजिक एजेन्डे पर तीव्रता से कुशल हुआ है, ताकि जनता बांटी जा सके, ध्यान स्थितियों से हटे व साथ-साथ आरएसएस के साम्प्रदायिक सपने भी साकार हों। मुस्लिम महिलाएं शान्त रहीं जब उच्चतम न्यायालय में तीन तलाक के खिलाफ उनकी लड़ाई को मुस्लिम मर्दों को राक्षस साबित करने के लिए इस्तेमाल किया गया (तीन तलाक को तो न्यायालय ने रद्द कर ही दिया था)। जनवादी लोगों के अलावा मुस्लिमों के भी पैरों तले जमीन फिसल गई जब बाबरी मस्जिद पर उच्चतम न्यायालय ने ऐसा एकतरफा फैसला एकमत से सुनाया जो कोर्ट की ही बताई गई संविधानिक हिदायतों के खिलाफ था। सीएए, एनआरसी और असम में इसके सम्बन्ध का स्पष्ट नजरिया, असम के *19* लाख 'विदेशी' जिनमें कुछ साम्प्रदायिक आधार पर राहत के लिए चुने जाएंगे, आरएसएस सरकार की पुलिस की जामीया विश्वविद्यालय में बर्बरता - इन सबने सवालों को मुस्लिम महिलाओं के सामने ठोस रूप से खड़े कर दिये। जामीया की उपकुलपति अपने छात्रों पर पुलिस बर्बरता के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराने की चेष्ठा कर रही हैं; अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उप कुलपति ने अपने छात्रों के खिलाफ पुलिस बलाई। यह जबकि दोनों को पद इसलिए मिला, क्योंकि वे आरएसएस सरकार के हिमायती थे, व दोनों ने अपने छात्रों के खिलाफ एक जैसी पुलिस बर्बरता देखी है।

इसी आर्थिक हालातों में देखिये - छात्रों और सभी महिलाओं के साथ क्या स्थितियां हैं। उच्च शिक्षा संस्थानों में तूफान हैं। ठेके पर शिक्षक रखने के खिलाफ, व्यवसायीकरण, लगातार निजीकरण, वजीफो में कटौती, अनुसंधान के लिए फंड कटौती, शिक्षा का भगवाकरण के खिलाफ; शिक्षक भी लड़ रहे हैं और छात्र भी। उच्चतम न्यायालय में कर्मी मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ यौन उत्पीड़न की शिकायत करती हैं - आन्दोलन उसे न्याय दिलाने में नाकाम होता है; न्यायाधीश ही कानूनों का कचुम्बर बनाते हैं। उत्तर प्रदेश में आरएसएस सरकार ने शह दी उसके यौन हिसा के गुनाहगार नेताओं को। महिलाओं ने देखे एक राजपूत गरीब परिवार के हालात, जब उसकी बेटी ने आरएसएस विधायक सेंगर का विरोध किया; कठुआ में आरएसएस ने बलात्कारियों और हत्यारों का साथ दिया। यौन हिंसा लगातार जारी है, व *2012* में उफान में खीचे गये वादों का अंत यही हुआ है कि कुछ भी सुधरा नहीं। ये असलियतें, व "हिन्दु राष्ट्र" पर आरएसएस का लगातार जोर महिलाओं को अपना "बहू-बेटी-इज्जत" वाला भविष्य स्पष्ट दर्शाता है, और स्पष्ट करता है कि मनुवादी विचारधार की सामंती, पित सत्तात्मक समझ सब महिलाओं के लिए - छोड़ो दलित, छोड़ो अल्पसंख्यक - ..... ढोल और नारी ..... सब औरतों का भविष्य है। शहरों में छात्राएं, पढ़ी लिखी मध्यम वर्गीय महिलाएं, मुस्लिम महिलाओं के साथ संख्या में मिलकर कह रही हैं - हमें कबूल नहीं।

संघर्ष का नया रूप : शाहीन बाग

इस तरह, हिन्दुत्व फासीवाद का भारत के शहरों में सामना हो रहा है - छात्रों, नौजवानों, नागरिकों और बड़ी संख्या में महिलाओं के जनवादी उफान द्वारा। विशेषकर मुस्लिम महिलाओं ने शाहीनबाग का रूप या मॉडल रचाया है। संघर्ष का जनवादीकरण किया है ऐसा रूप अपनाकर जो पूरे के पूरे परिवारों और विशेषकर महिलाओं को निरंतर जन विरोध में लगातार भाग लेने दे। जनता की रचनात्मकता की वर्षा दिखाते हुए इस संघर्ष में यह सबसे रचनात्मक कदम है - संघर्ष के रूप के लिहाज से भी व दमन का मुकाबला करने में भी। वहां पर एक त्यौहार सा माहौल है। महिलाएं इसे चला रही हैं, संभाल रही हैं और उनकी समझदारी और काबलियत सब तरफ झलकती है। परिवार चलाने और समाज चलाने की अपनी कुशलता का उपयोग उन्होंने आन्दोलन चलाने में लगा दिया है। समाज के, परिवरों के, मजहबों के इतने सारे पित सत्तात्मक मान्यताएं, इतिहास के कूड़ेदान में फिक रहे हैं, संघर्ष के व्यवहार ने उनको ऐसा झटका दिया है। जो महिलाएं इस आन्दोलन में हैं, उन्हें जंजीरें गिरती दिख रही हैं; पर वे कहती हैं कि इस लड़ाई के इलावा हमारे लिए कोई विकल्प ही नहीं - ये हमारे बच्चों के लिए है; हम क्यों कहीं जाएंगे? यह हमारी मिट्टी है, यह हमारे देश पर अधिकार के लिए है।

प्रतीक बनी संविधान की प्रस्थापना

इस आन्दोलन का प्रतीक बनकर उभरा है - संविधान का प्रस्थापना (केवल संविधान नहीं, हालांकि वह भी फोकस में आया है)। वह आधार बना है, जिस पर 'भारत' की परिभाषा खड़ी है। कुछ चर्चा जरूरी है कि क्यों इसने इस उफान में नजर पकड़ ली है। संविधान में परस्पर विरोधी धाराएं हैं, कई बार आरएसएस-केन्द्र सरकार भी अपने नीतियों को इसी की किसी धारा के आधार पर सही ठहरा लेती है। प्रस्थापना इरादों की घोषणा है। यह वह दस्तावेज हैं जो उन वर्षों में लिखा गया जब लाल सेना ने हिटलर को हराया था, जब एक तिहाई दुनिया लाल थी, जब दुनिया की जनता समानता की तमन्ना लिए चंचल थी और भारत की भी। भारत, जिसमें नौसेना विद्रोह, तेलंगाना सशस्त्र किसान विरोध जो नवजनवादी भारत के सपने अपने आंचल में लाई और अन्य ऐसे, माहौल को रंग रहे थे। इसीलिए समानता, न्याय - समाजिक, आर्थिक और राजनीतिक - के वायदे आज के भारत का भी मन लुभा रही हैं उसी तरह जैसे संविधान की प्रस्थापना में भारत की विविधता की मान्यता और सबके लिए समान स्थान के आश्वासन।

यह आन्दोलन समाज का जनवादीकरण कर रहा है, महिलाओं के कई भागों को विशेषकर मुस्लिम महिलाओं को भी, भारत की परिभाषा पर बहस में भाग लेने का मौका दे रहा है। पुरानी कई प्रेरणाओं को नयी जगह दी गयी है, जैसे सावित्री बाई फूले। प्रगतिशील कवियों के लेख और शेर आज की आवाज बनकर गूंज रहे हैं, गीत और नारे समानता और आमजन की जरूरतों को आवाज दे रही है। यह फासीवाद को जनता की चुनौती है; शासक वर्गीय पार्टियां दूर से समर्थन करने पर रख दी गई हैं; न आन्दोलन का नेत त्व उनका है, न वे इन्हें नियंत्रित कर रही हैं। संघर्ष की महक प्रगतिशील है, इसलिए थोड़ी वाम है, जनपक्षीय है, आर्थिक व सामाजिक वर्गीकरण विरोधी हैं। क्रांतिकारी आन्दोलन के सामने बड़ी चुनौती है। इस आन्दोलन में बहुत सम्भावनाएं हैं।

पित सत्ता नहीं मानते।

जिस तरह महिलाएं निकल कर आकर लड़ रही हैं; इसकी संभावनाओं को समझना बहुत ही जरूरी है। महिलाओं को सामंती पित सत्ता के विशाल बोझ के खिलाफ लड़ना पड़ेगा परन्तु उनके लिए पित सत्ता से मुक्ति साम्यवादी समाज की स्थापना के साथ जुड़ी है। हिन्दुत्व फासीवाद सामंती पित सत्ता और जातिवाद को नया जीवन देने चला है - यही तो मनुवाद में निहित है - व अल्पसंख्यक का सफाया भी करने चला है और इसके खिलाफ संघर्ष की जीत महिलाओं के लिए बहुत ही जरूरी है। महिलाओं के इस विशालम्य आन्दोलन और हिम्मत को उन उफानों का भाग बनना पड़ेगा जो फासीवाद की हार से आगे जाकर, असली या नई जनवादी क्रांति को लायेंगी। क्रांतिकारी महिलाओं और संगठनों की जगह चलते आन्दोलन की धारा में है। कार्य है अपनी काबलियत और पहलकदमी को विकसित करना, इस आन्दोलन को ताकतवर बनाना।

पदोन्नति में आरक्षण के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय का फैसला

(पृष्ठ 1 का शेष)

प्रतिनिधित्व पर्याप्त न हो। बाद में नागराज केस में फैसले में उच्चतम न्यायालय में कहा कि सरकार की यह मान्यता आंकड़ों पर आधारित होनी चाहिए अर्थात सरकार के ऐसा मानने का वास्तविक आधार होना चाहिए। इस फैसले ने सरकार द्वारा पदोन्नति में आरक्षण के लिए ऐसे अध्ययन को जरूरी बना दिया। बाद में इस फैसले को संशोधित कर इस अध्ययन की बाध्यता को हटा दिया गया। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने पदोन्नति में आरक्षण न करने के लिए किसी अध्ययन की जरूरत की बात नहीं जिसमें राज्य की सेवाओं में इन समुदायों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त होना साबित होता हो।

उत्तराखंड के जिस केस में उच्चतम न्यायालय ने यह फैसला दिया, उसमें पदोन्नति में आरक्षण के प्रावधान को खत्म किया गया था फिर भी उच्चतम न्यायालय ने इस पर गौर नहीं किया कि इसे खत्म करने के पहले किन आंकड़ों के आधार पर सरकार इस निष्कर्ष पर पहुँची कि राज्य की सेवाओं में इन तबकों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त है। सबसे उल्लेखनीय पहलू तो यह है कि राज्य सरकार ने ऐसा अध्ययन कराया था। इस अध्ययन को राज्य मंत्रीमंडल की स्वीकृति भी मिल गई थी। यह अध्ययन साफ स्थापित करता है कि राज्य की सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है। परन्तु इसके बावजूद राज्य सरकार ने पदोन्नति में आरक्षण समाप्त कर दिया। यह रिपोर्ट उच्चतम न्यायालय के सामने भी थी, खुद न्यायालय ने अपने आदेश में इसका हवाला भी दिया है, परन्तु इसके बावजूद उच्चतम न्यायालय ने आरक्षण खत्म करने के इस आदेश को सही ठहराया।

उच्चतम न्यायालय ने जहां एक ओर आरक्षण लागू किये जाने पर अधिकाधिक सीमाएं लगाईं वहीं इसे खत्म करने पर कोई भी सीमा लगाने से इंकार कर दिया। स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय की नजर में आरक्षण एक बुराई है, भले ही यह बुराई जरूरी हो न कि सामाजिक समानता की ओर कदम जैसा कि संविधान में दर्ज है। साथ ही उच्चतम न्यायालय ने संविधान को दिशामूलक नियमावली नहीं माना बल्कि उसका दर्जा सामान्य कानूनों से भी कम कर दिया। ऐसा उच्चतम न्यायालय ने सभी मामलों में नहीं किया, बल्कि उन्हीं क्षेत्रों में किया जो समाज में सत्तारूढ़ तबकों के हितों के अनुरूप नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय निदेशात्मक सिद्धान्तों पर ही ऐसा भेदभावपूर्ण रवैया अपनाता रहा है, कुछ पर अमल के लिए उतावला है और कुछ को पूर्णतः अनदेखा करता है।

आरएसएस नेतृत्वाधीन उत्तराखण्ड सरकार ने उच्चतम न्यायालय के सामने आरक्षण की समाप्ति की वकालत की। यह आरएसएस की अवधारणा के अनुरुप है। केन्द्र सरकार का कहना है कि उसकी मामले में कोई भूमिका नहीं रही क्योंकि उसका काम तो उन्हीं की राज्य सरकार कर रही थी। सवाल यह है कि केन्द्र सरकार ने संविधान के प्रावधान की रक्षा के लिए कोई कदम क्यों नहीं उठाया?

शासक वर्गों के कई दल इस फैसले की आलोचना कर रहे हैं। फैसले की आलोचना करने वाली कांग्रेस इस बात पर खामोश है कि पदोन्नति में आरक्षण खत्म करने का *2012* का निर्णय कांग्रेस की सरकार ने ही लिया था। अपने आपको अनुसूचित जातियों की पार्टियां बनाने वाले दल भी केवल बयानबाजी तक सीमित हैं। उनमें से कुछ तो आरएसएस नेतृत्वाधीन केन्द्र सरकार का हिस्सा हैं। दरअसल आरक्षण के विरोध में आन्दोलन के समय ये पार्टियां खामोश रहती हैं। केवल सत्ता का सुख पाने के लिए इन्हें आरक्षण याद आता है। आरक्षण के खिलाफ देश में कई बार आंदोलन हुए हैं परंतु आरक्षण-विरोधी आंदोलनों के खिलाफ आवाज उठाने तथा सड़क पर आने से ये पार्टियां हमेशा परहेज करती रही हैं। इनका प्रचार रहा है कि जब संविधान आरक्षण देता है तो हमें संघर्ष की क्या जरूरत है? परंतु सत्ताभोगी ये पार्टियां जनता को गुमराह करती हैं और यह नहीं बताती कि यदि डत्पीड़ित तबके आंदोलन में नहीं आते तो संविधान में दर्ज अधिकार भी सुरक्षित नहीं रहते।

केन्द्रीय बजट 2020 – 21

(पृष्ठ 4 का शेष)

वर्ष *2020-21* में केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाओं के खर्च में *11* फीसदी और केन्द्र द्वारा प्रोत्साहित योजनाओं में *4.5* फीसदी की कटौती की गयी है। इनमें खाद्यान्न सब्सिडी, खेती व सम्बन्धित कार्य, उत्तरपूर्व में विकास, सामाजिक कल्याण, ऊर्जा, आदि शामिल हैं। आयुष्मान भारत, स्वच्छ भारत व पीएम किसान में भी भारी कटौती की गयी है। यह सब तब जबकि इन मदों में खर्च बढ़ाने की भारी जरूरत है।

अनुसूचित जातियों व जनजातियों के कल्याण के लिए खर्च में, जो पहले से ही बहुत कम हैं, और कटौती कर दी गयी है। वर्ष *2020-21* में महिलाओं के लिए खर्च पिछले साल के *1,42,813* करोड़ से *0.45* फीसदी बढ़ाया है और *1,43,461* कर दिया गया है। यह पिछले साल के कुल खर्च का *4.9* फीसदी था पर अब घटाकर *4.7* फीसदी कर दिया गया है।

अंत में कहा जा सकता है कि मोदी सरकार का यह बजट ग्रामीण जनता की समस्याओं को और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के तीव्र संकट को हल करने के लिए कोई कदम नहीं उठाता। यह सरकार की जनविरोधी नीतियों की विनाशकारी दिशा को आगे बढ़ाता है।

2020–21 आम बजट पर केन्द्रीय कमेटी का वक्तव्य

(पृष्ठ 1 का शेष)

बढ़ाने का कोई प्रस्ताव नहीं है। यह बजट पूर्णतया किसान विरोधी है। केवल एक ही प्रस्ताव किसानों के लिए है और वह है उनके उधार की सीमा बढ़ाना, एक ऐसा कदम, जिसने पहले से ही उन्हें कर्ज में फंसा रखा है।

आरएसएस-भाजपा सरकार ने समाज के सबसे उत्पीड़ित तबकों पर ही सबसे बड़ा हमला किया है। मनरेगा पर *2019-20* में खर्च की गयी रकम से *13* फीसदी यानी *9,580* करोड़ रुपए काट दिये गये हैं। खाद्यान्न सुरक्षा कानून के अमल के लिए आबंटित कोष में भी भारी कटौती की गयी है। उत्पीड़ित जातियों के पक्ष में आरएसएस-भाजपा बड़ी-बड़ी बातें करती रहे हैं पर उनके लिए आबंटित योजना खर्च भी काटा गया है। यह कटौती पिछले दो साल में ज्यादा तेजी से की गयी है। गरीबों व उत्पीड़ित लोगों के लिए अन्य कल्याण योजनाओं में भी कटौती की गयी है।

मेक इन इंडिया के दावों के बावजूद औद्योगिक विकास पुनर्जीवित करने के लिए कोई कदम घोषित नहीं किया गया है। लघु, सीमान्त व सूक्ष्म उद्योगों को लिए जो घोषणाएं हैं वे दिखावटी हैं और इनसे कोई वृद्धि नहीं होगा। वित्त मंत्री ने केवल एक ही कदम की ओर इशारा किया है और वह है ठेकेदारी बढ़ाने का, जो ठेकेदारी श्रम कानून में संशोधन के उनके प्रस्ताव से नजर आता है। एक के बाद एक क्षेत्र घाटे का सामना कर रहे हैं पर उसे पार करने के लिए कोई कदम घोषित नहीं किया गया है। केवल निजीकरण को तेज करने की घोषणा की गयी है जिससे मेहनतकश लोगों, विशेषकर संगठित क्षेत्र के मजदूरों के हालात और बिगड़ंगे। असंगठित मजदूरों के अधिकार पहले ही अमल में नहीं हैं।

वित्तमंत्री ने देश की आकांक्षाओं को पूरा करने का नारा दिया है पर उन्होंने साधारण भारतवासियों की आकांक्षाओं पर सबसे करारा हमला बोला है। स्वास्थ्य पर आबंटन लगभग *67* हजार करोड़ रूपए है जो पिछले वर्ष की तुलना में *3.8* फीसदी बढ़ा है और मंहगाई दर से कम है। बहुप्रचारित आयुष्मान भारत का आबंटन भी पुराने दर पर है, जिसका अर्थ है कि पुरानी योजनाओं की इस पुनर्रचना के बावजूद प्रभावी आवरण घटेगा। मौलिक विज्ञान क्षेत्र के लिए आबंटन नहीं बढ़ाया गया, जबकि चिकित्सकीय विज्ञान का आबंटन कम कर दिया गया है। वित्तमंत्री ने निजी मेडिकल कालेजों द्वारा सरकारी जिला अस्पतालों का इस्तेमाल करने की एक अनोखी योजना घोषित की है। पूरा चिकित्सा क्षेत्र ही निजी सार्वजनिक भागीदारी के प्रारूप पर ढ़केला जा रहा है। केन्द्रीय बजट में स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए आबंटन कुल खर्च का मात्र *2* फीसदी है और यह सकल घरेलू उत्पाद का *0.3* फीसदी है।

शिक्षा के साथ भी ऐसा व्यवहार किया गया और इसके लिए कुल खर्च का *3* फीसदी आबंटित किया गया है, जो सकल घरेलू उत्पाद का मात्र *0.45* फीसदी है। सरकार ने निजीकरण को बढ़ाने का प्रस्ताव रखा है और उच्च शिक्षा में, विशेषकर सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों पर करारा हमला किया है। बजट में शिक्षा के साथ बुरा व्यवहार किया गया है।

प्रयासों के बावजूद केन्द्रीय बजट अर्थव्यवस्था व जनता की गम्भीर परिस्थिति को ढ़क नहीं पाया। भारतवासी दुनिया के सबसे भूखे लोगों में से हैं, जैसा कि भूखे लोगों की विश्व तालिका बताती है। इसके बावजूद खाद्य सुरक्षा में कटौती! हमारे देश में ऐसे संक्रामक रोगों से पीड़ित लोगों की संख्या दुनिया में सबसे शीर्ष पर है, जो रोग दुनिया के प्रमुख हिस्सों से गायब हो चुके हैं। ऐसी उच्च बेरोजगारी दर के हालात में भी रोजगार बढ़ाने और बेरोजगारी से राहत प्रदान करने का कोई उपाय ना करना दिखाता है कि देश के युवाओं के प्रति कितना कम सम्मान है।

करों में कुछ फेर-बदल किया गया है, पर इनसे मध्य वर्ग और बेहतर मजदूरी पाने वाले मजदूरों को कोई लाभ नहीं मिलेगा। कर की दरें घटाने के साथ छूट हटा देने का अर्थ है जरूरतमंद लोगों पर इसका बोझ बढ़ेगा। दूसरी ओर कारपोरेट करों की दरें घटा दी गयी हैं, जो शायद पिछले साल के अनुभव से मिली शिक्षा का असर है जब कारपोरेट दर बढ़ाने के कुछ ही दिन बाद उन्हें वापस लेना पड़ा था।

आयात कर की दरों को कुछ बढ़ाया गया है, पर उनकी सूची से यह स्पष्ट है कि यह चीन से आयात को ही मुख्यतः प्रभावित करेंगी। मोदी सरकार द्वारा आरसीईपी में भाग लेने से इंकार करने के बाद यह और स्पष्ट हो जाता है कि सरकार अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में चीन को निशाना बना रही है।

बजट का सबसे स्पष्ट दिखने वाला पक्ष है अन्दरूनी सुरक्षा के खर्च में की गयी वृद्धि। गृह मंत्रालय के खर्च को *1,19,025* करोड़ रुपये से बढ़ाकर *1,67,250* करोड़ कर दिया गया है जो लगभग एक तिहाई की वृद्धि है। दूसरी ओर सुरक्षा बलों के लिए भी आबंटन नहीं बढ़ाया गया है। यह दिखाता है कि आरएसएस-भाजपा सरकार का मुख्य जोर, जन दिखावे के लिए चाहे वे जो कहें, देश की जनता को दबाने पर है। वे विदेशी हमले के खतरों का दावा करते रहते हैं। वे जानते हैं कि उनके राज के लिए मुख्य खतरा देश के भीतर से, देश की जनता से ही है। उनकी फासीवादी मुहिम को जनता के प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है और गृहमंत्रालय के लिए यह बढ़ा हुआ आबंटन दिखाता है कि देश की जनता को दबाने के लिए वे अपनी सुरक्षा ढांचे को और मजबूत करेंगे। वे देश की जनता को मुख्य दुश्मन समझते हैं। यही वह विभाग है जिसका आबंटन इतना तेजी से बढ़ा है और लोगों को समझना चाहिए कि आरएसएस-भाजपा सरकार की भावी दिशा क्या है।

आरएसएस-भाजपा सरकार ने राज्य सरकारों की वित्तीय ताकत को सिलसिलेवार ढंग से कमजोर कर दिया है, जो संघीय ढांचे पर उनके लगातार किये जा रहे हमलों का हिस्सा है। जीएसटी थोपे जाने के साथ राज्य सरकारों द्वारा अपने स्रोत बढ़ाने की ताकत को कमजोर कर दिया गया है और करो में राज्यों के हिस्से में भी कटौती की गयी है। हालांकि यह कटौती बहुत छोटी है पर इससे केन्द्र की दिशा समझ में आ सकती है। यह कटौती करों में राज्यों के हिस्से के भुगतान को लम्बित रखने अतिरिक्त है। यह कटौती स्वास्थ्य, शिक्षा के आबंटन में की गयी कटौती के दृष्टिगत भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दोनो विषय राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार में आते हैं।

पूरा बजट ही जनविरोधी है और इसका विरोध किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट दिखाता है कि आरएसएस-भाजपा सरकार देसी व विदेशी कारापोरट तथा जमींदारों का हित पूरा करने के लिए जनता पर बोझ बढ़ाने के प्रति संकल्पबद्ध है। इसमें जनता के हित के प्रस्ताव मौजूद ही नहीं हैं। यह जनता की क्रय क्षमता को और घटा देंगे।

ऐसा नहीं है कि सुश्री निर्मला सीतारमण के बजट भाषण में कोई भी नई बात नहीं थी! उन्होंने सिन्धु घाटी सभ्यता की लिपि, जिसे आज तक विशेषज्ञ नहीं पड़ पाये, को पढ़ा और इस पुरानी सभ्यता का नया नामकरण– सरस्वती-सिंधु सभ्यता– भी कर डाला। संभवतः ऐसा सिंहासन के पीछे असली ताकत, नागपुर के आर.एस.एस. नेताओं को खुश करने के लिए किया गया।

(भाकपा (माले) न्यू डेमोक्रेसी की केन्द्रीय कमेटी द्वारा फरवरी 1, 2020 को जारी)

कश्मीर की नाकेबंदी पर सुप्रीम कोर्ट का रवैया

उपदेशों की बहुतायत पर राहत कोई नहीं

10 जनवरी, *2020* को सुप्रीम कोर्ट ने जम्मू-कश्मीर में इंटरनेट बंद किये जाने और संचार के अन्य साधनों को रोक देने तथा इसका मीडिया की स्वतंत्रता पर प्रभाव, जो अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकार का हिस्सा है, पर अपना निर्णय सुनाया। इस फैसले में संविधान की रक्षा करने और उसमें दिये गये अधिकारों की हिफाजत करने की अपनी जिम्मेदारी से किनारा कर लिया। कोर्ट ने इन याचिकाओं को, जिनमें हैबियस कार्पस की याचिकाएं भी थीं, इनके दाखिल किये जाते समय यह कहकर सुनने से इंकार कर दिया था कि इससे सुरक्षा का सवाल जुड़ा हुआ है। बंदी के लगभग *160* दिन गुजर चुके हैं, फिर भी सर्वोच्च न्यायालय इसे काफी नहीं समझता।

अगस्त *4, 2019* के बाद से अब तक के छह समय से भी अधिक लम्बे समय में जम्मू कश्मीर में नागरिक अधिकार पूरी तरह दबा दिये गये हैं। लोगों का जीवन पूरी तरह से तहस-नहस हो गया है और मौलिक अधिकार भी पूरी तरह से नकारे जा रहे हैं। ये सारे तथ्य कई टीमों की रिपोर्टों में, जिनके सदस्य वहां जाकर रहे हैं में दर्ज हैं। साथ ही कुछ विदेशों की न्यूज एजेंसियों द्वारा भी दर्ज किये गये हैं।

अपना निर्णय देते समय सर्वोच्च न्यायालय ने स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर तो जोर दिया पर सुरक्षा की चिंताओं को सही ठहराया। न्यायालय ने आदतन संविधान में दर्ज स्वतंत्रताओं का हवाला तो दिया, साथ ही अन्य देशों के संविधानों का भी उसने जिक्र किया, पर भारत के अपने संविधान के सिद्धान्तों को अमल करने से मना कर दिया। इस तरह से उसने सरकार को लोगों के जनवादी अधिकारों को नष्ट करने की खुली छूट दे दी, इसमें एक छोटी शर्त लगाकर कि ऐसा एक-एक हफ्तों की किश्तों में किया जाना चाहिए। कितनी बार यह सीमा बढ़ायी जा सकती है यह भी आदेश नहीं दिया।

यह निर्णय जजों द्वारा उपदेश देने जैसा था। उनसे उपेक्षा न्याय करने की थी, पर वे धर्मगुरू की तरह बोले। सर्वोच्च न्यायालय, न्याय करने की संस्था है, केवल न्याय के सिद्धान्तों का उल्लेख करने की नही। संविधान केवल कोई नैतिक सूत्र नही है, जैसा कि उसे बना दिया है, वह नागरिकों के अधिकारों समेत मार्गदर्शक सिद्धान्तों को हिदायत है। सम्भवतः यह औपनिवेशिक काल के सर्वोच्च न्यायालयों की छाया ही है कि वह अपने मौलिक अधिदेश अनुसार न्याय नहीं कर पा रही, कि कहीं, राज ही खतरे में न पड़ जाए। सम्भवतः उच्चतम न्यायालय अपने ही अस्तित्व के अधिदेश, हमारे संविधान के प्रति भी इसी निश्कर्ष पर पहुंच गया है कि संविधान के अनुसार राज चलाना संभव नहीं है। उस परिपेक्ष्य में तो यह लम्बा उपदेश समझ में आने योग्य है, इस रोशनी में नहीं कि वह क्या कह रहा है, इस रोशनी में कि वह क्या कहने से बचा जा रहा है।

सर्वोच्च न्यायालय का हाईकोर्ट समेत सभी निचली अदालतों को यह संकेत बहुत ही परेशान करने वाला है। वह भी जनता को के मसलों पर काफी उचित हल्ला-गुल्ला करती हैं, परंतु असल में सरकार की दिशा को अपनाती हैं अर्थात राहत नहीं देतीं। यह रवैया इस बात को नजरंदाज करता है कि किसी भी न्यायिक प्रक्रिया का मूल्यांकन उसके द्वारा दिये गये ठोस न्याय से ही किया जा सकता है, उसके निर्णय की सुन्दर शब्दावली से नहीं।

संविधान के अनुसार मौलिक स्वतंत्रता पर जो प्रतिबंध लगाए जाते हैं वे "उचित प्रतिबंध" होने चाहिए। इसके दो अंश हैं। पहला यह कि ये केवल एक प्रतिबंध है, अधिकार को पूरी तरह से समाप्त करना नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के सामने अवसर था कि वह अधिकारों को सीमित करने तथा उन्हें पूरी तरह खत्म करने के बीच अंतर को स्पष्ट करता तथा साफ कहता कि सीमित करने के नाम पर खत्म करने की इजाजत संविधान नहीं देता। जब बहुत लम्बे समय तक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जिसमें प्रेस की आजादी और इंटरनेट भी शामिल, एकत्र होना व अन्य आजादी, को रोक दिया गया है, यह कोई प्रतिबंध नहीं, पूर्ण निषेध होता है। न्याय प्रक्रिया में दोनो के बीच फर्क ढंग से स्थापित है। दूसरी बात यह है कि इस प्रतिबंध का उचित होना जरूरी है, यानी इसका दायरा और समय भी सीमित होने चाहिए और किसी वास्तविक आधार पर किया जाना चाहिए। ठस संदर्भ में "समानुपात" का सिद्धांत एक स्थापित न्यायिक सिद्धांत है। सुप्रीम कोर्ट ने खुद ही यह स्थापित किया है कि यह प्रतिबंध अनिश्चित काल के लिए नहीं हो सकते पर इस पर कोई समय सीमा उसने नहीं लगाई है, ना ही कोई ऐसा वस्तुगत आधार बताया जिससे ऐसी समय सीमा तय की जा सके।

इससे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि सुप्रीम कोर्ट ने इन प्रतिबंधों की समीक्षा करने का अधिकार उन्हीं अधिकारियों को दे दिया जो इन्हें थोपने के दोषी हैं। उन्हें अपने ही मामले में न्यायाधीश बना दिया। पिछले साल *4* अगस्त के बाद से जिन अधिकारों पर प्रतिबंध लगाया गया है उन्हें बहाल करने का कोई आदेश सुप्रीम कोर्ट ने नहीं दिया। जो एक मात्र समयावधि सुप्रीम कोर्ट ने निर्धारित की वह केवल प्रक्रिया से सम्बन्धित है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी तय किया कि वह सरकार के इस दावे पर गौर करेगा कि प्रतिबंध लगाने के आदेशों को विशेषाधिकार दस्तावेज माना जा सकता है या नहीं।

सुप्रीम कोर्ट का निर्णय एक बार फिर उस चेतावनी को रेखांकित करता है, जो संविधान के बनाते समय बुनियादी आजादी के सवालों को तय करने का अधिकार विधायिका को देने के प्रति दी गयी थी। संविधान सभा की चर्चा में अनुच्छेद *19* (इसका अंक बाद में बदला गया) के तहत बुनियादी स्वतंत्रता के सवालों को सीमित करने के प्रावधानों पर चर्चा करते हुए हुकुम सिंह ने एक सार्थक टिप्पणी की थी "एकत्र होने की स्वतंत्रता, प्रेस व अन्य स्वतंत्रताओं को इतना अनिश्चित बना दिया गया है और इन्हें पूरी तरह विधायिका की दया पर छोड़ दिया गया है"। बाद का इतिहास साबित करता है कि इस अधिकार को विधायिका को छोड़े जाने का अर्थ है कि यह कार्यपालिका की दया पर रह जाएगा। तब से अब तक का व्यवहार दिखाता है कि इन अधिकारों पर प्रतिबंधों का अधिकार कार्यपालिका पर छोड़े जाने से यह डर गलत नहीं है कि इन्हें पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाएगा। जम्मू-कश्मीर में जनवादी अधिकारों का सवाल इनके निषेध का स्पष्ट उदाहरण है। सर्वोच्च न्यायालय को इन अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए थी पर उसने इनकी कुर्बानी दे दी।

सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय इतना अतर्कसंगत है कि इस निर्णय की प्रमुख समाचार पत्रों ने भी आलोचना की। अंग्रेजी अखबार द हिन्दू ने अपने सम्पादकीय में लिखा, "निर्णय का निराशाजनक पक्ष यह है कि कोर्ट ने सरकार के आदेश की वैधता पर टिप्पणी नहीं की"। *11* जनवरी *2020* को उसने लिखा कि यह "सरकार को उसके द्वारा अपने अधिकार का इस्तेमाल किये जाने के तरीके पर जिम्मेदार नहीं ठहराया गया"।

इंडियन एक्सप्रेस ने भी सम्पादकीय में इसी तरह की टिप्पणी की। उसने *11* जनवरी *2020* को लिखा "सिद्धान्तों की इतनी लम्बी व्याख्या के बाद आश्चर्य हो रहा है, और इसे निराशा की कहा जाए कि कोर्ट ने याचिका दाखिल करने वालों को राहत देने के लिए इन सिद्धान्तों का अमल नहीं किया ..... इंटरनेट पर लगाए प्रतिबंध को, जो अब *5* माह पुराना हो चुका है, गैरकानूनी घोषित कर रद्द किया जाना चाहिए था ..... ।"

हिन्दुस्तान टाईम्स के सम्पादकीय में भी इस निर्णय पर दो चिन्ताएं व्यक्त कीं। उसने लिखा कि यह दुनिया का सबसे "लम्बी अवधि का इंटरनेट ब्लैकआउट है"। उसने लिखा कि कोर्ट ने "इन सिद्धान्तों को सूचीबद्ध करने में *5* माह का समय लगाया। यह कुछ हद तक अपनी जिम्मेदारी से बचना है"। साथ ही कहा गया "सुप्रीम कोर्ट का निर्णय कोई भी तुरन्त राहत नहीं देता। सुप्रीम कोर्ट को अपने सिद्धान्तों पर अमल करते हुए अधिकारों की तुरन्त बहाली का आदेश देना चाहिए था"। (*11* जनवरी, *2020*)

जाहिर है कि इस निर्णय ने उन सभी की आशा पर पानी फेर दिया है, जो जनवादी अधिकारों की बहाली के लिए सर्वोच्च न्यायालय से उम्मीद लगाए बैठे थे। यह निर्णय एक प्रारूप पर आधारित है, जिसमें सजा व तोहफे देने की विशाल ताकत वाली कार्यपालिका के पक्ष के प्रति समर्पण है।

अपने निर्णय में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे, कि जो भी न्यायालय का दरवाजा खटखटाए उसे न्यायसंगत राहत दी जाए, उन्हें अमल न करने के अलावा जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये उनमें भी बहुत कमियां थीं। कोर्ट कम से कम अधिकारों को सीमित किये जाने तथा उन पर प्रतिबंध लगाए जाने में फर्क तो कर सकता था और इन दोनो में फर्क करने के लिए कुछ पैमाना घोषित करने की उससे उम्मीद थी। ऐसा न करके इस निर्णय के कानूनी रूप से खराब होने की खुली आलोचना की स्थिति बन गयी है। यही नहीं यद्यपि कोर्ट ने इंटरनेट रोके जाने के सवाल पर बहुत कुछ कहा, उसने इसे बुनियादी अधिकार घोषित नहीं करके उसके तार्किक परिणाम तक नहीं पहुंचाया।

जिन लोगों ने सोचा था कि जब सुप्रीम कोर्ट ने एडीएम जबलपुर केस (वह कुख्यात निर्णय जिसमें कहा गया था कि इमरजेंसी के दौरान बुनियादी अधिकारों के अमल पर जोर नहीं दिया जा सकता) पर यह कहा कि उसमें दिया गया निर्णय गलत था, तो उसने इस विवाद को हल कर दिया है, गलत साबित हुए। अब यह सवाल और बड़ा रूप धारण कर चुका है क्योंकि इसमें इमरजेंसी न लगाए जाने पर भी नागरिक अधिकार व बुनियादी हक छीने जा सकते हैं। यह इस बात से भी स्पष्ट है कि लगातार महीनों तक जनवादी अधिकारों के हनन की, यहां तक कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर भी महीनों तक सुनवाई नहीं की गयी।

सर्वोच्च न्यायालय एक बार फिर जनता के अधिकारों की रक्षा करने में विफल रहा है। सच यह है कि कोर्ट आरएसएस-भाजपा के नेत त्व में संचालित कार्यपालिका के सामने झुक गया है। आरएसएस-भाजपा साम्राज्यवादियो, कारपोरेट व घरेलू प्रतिक्रियावादियों की सेवा में अपना हिन्दु राष्ट्र थोप कर जनता के अधिकारों को कुचलने पर आमादा हैं। हमें नहीं भूलना चाहिए कि जर्मनी में नाजी भी चुनाव के जरिये सत्ता में आए थे और उन्हें भी उस देश की न्यायपालिका से किसी दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ा था। जो न्यायिक स्वतंत्रता नजर आती थी और कुछ मामलों में यह भी कहा जाता था कि न्यायपालिका अपनी सीमा से आगे निकल रही है, वह दौर गठबंधन सरकारों का था और इस वर्तमान दौर में उसकी कोई परछाईं नजर नहीं आती। राजसत्ता के विभिन्न अंगों से, न्यायपालिका समेत, जनता के अधिकारों के क्रूर दमन के विरुद्ध खड़ा होने की उम्मीद नहीं की जा सकती, उन अधिकारों पर भी जो संविधान में दर्ज हैं, जिस संविधान की वे दिन-रात कसम खाते हैं।

बुनियादी अधिकारों की, वैसे किसी भी अधिकार, की रक्षा व अमल के लिए लोगों का संघर्ष ही एकमात्र रास्ता है। अन्य मंच तभी संक्रिय होते हैं, जब लोगों का संघर्ष उनके हस्तक्षेप के लिए ऐसी स्थिति पैदा कर देता है। जो संघर्ष देश विदेश में चल रहे हैं वे इस बात को और उजागर करते हैं। लोग यह दिखा रहे हैं कि वे जनता के अधिकारों के निषेध को स्वीकार नहीं करेंगे। यही सही रास्ता है और व्यवहार में इसका पर्याप्त प्रदर्शन हो रहा है।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के प्रकाशन

न्यू डेमोक्रेसी	*(अंग्रेजी)*
प्रतिरोध का स्वर	*(हिन्दी)*
वायस ऑफ न्यू डेमोक्रेसी	*(तेलुगु-तेलंगाना)*
न्यू डेमोक्रेसी बुलेटिन	*(तेलुगु-आंध्र प्रदेश)*
विप्लवी गण लाइन	*(बंगला)*
इंकलाबी साडा राह	*(पंजाबी)*
संग्रामी एकता	*(ओडिया)*

8 मार्च 2020 का आवाह्न

संविधान प्रतिष्ठापित लैंगिक बराबरी के लिए संघर्ष तेज करो!

1947 के 72 साल बाद भी भारत में लैंगिक बराबरी की क्या स्थिति है? वैज्ञानिक पद्धतियों के दुरुपयोग द्वारा जन्म पूर्व लिंग जांच सहित सवाल शुरू हो जाता है। यह सामाजिक पूर्वाग्रहों व आर्थिक कारकों के साथ मिलकर परिवार के साधनों का बेटी बेटे के बीच वितरण की असमानता के रूप में जारी रहता है। समाज द्वारा महिलाओं के प्रति ढांचागत हिंसा महिलाओं की विशाल आबादी के पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य के प्रति समान पहुंच में असमानता द्वारा जारी रहती है।

सभी प्रकार के कार्यों में महिलाएं समान काम के समान वेतन से वंचित रहती हैं। खेत मजदूरी में महिलाओं को अधिकारिक तौर पर असमान वेतन दिए जाने का प्रावधान है काम में कोई फर्क लिखे बिना। अधिकांश मामलों में जमीन का पट्टा पुरुषों के नाम होता है। उत्तराधिकार के कानून में परिवर्तन के बावजूद पित सत्ता प्रभुत्व वाले समाज में महिलाएं विरले ही पिता की संपत्ति में अपना हिस्सा मांगती हैं। घरेलू काम महिलाओं के ही हिस्से आता है चाहे वे परिवार में आर्थिक उपार्जन में बराबर की भागीदार हैं तब भी। विधवाओं की समाज में कोई औकात नहीं है जबकि ऐसे पुरुष जिनकी पत्नी की मौत हो गई है को समाज में किसी तरह के भेदभाव से नहीं जूझना पड़ता। तलाकशुदा औरतों को बदनाम करना जारी है जबकि तलाकशुदा मर्दो पर कोई आंच नहीं आती। काम का समान अधिकार तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक मात त्व अवकाश तथा कार्य स्थलों पर क्रेच इत्यादि के रूप में राजकीय सहारा ना हो। कुछ श्रम कानूनों में यह सिद्धांत एक रूप से उपलब्ध हैं परंतु व्यवहार में कुछ थोड़ी सी संगठित तथा नौकरी पेशा श्रमिक शक्ति जिसमें की महिलाओं की संख्या आधे से बहुत कम है के अतिरिक्त व्यवहार में यह कानून लागू नहीं होते।

महिलाओं को सुरक्षित कार्य स्थलों के लिए लगातार लड़ना पड़ रहा है। सालों साल लग गए कार्य स्थलों पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ कानून लिखवाने में। कानून लिखा होने के बावजूद हर स्तर पर इसे लागू करवाने के लिए एक नया संघर्ष शुरू करना पड़ता है। जबकि महिलाओं ने आर्थिक उपार्जन की प्रत्येक गतिविधि में आने के लिए प्रत्येक पूर्वाग्रह और बंधन को तोड़ा है, उनके पेशों के उच्च स्तरों पर ना होना बिल्कुल भी हैरान करने वाला तथ्य नहीं है। अवसरों की समानता के सैद्धांतिक अधिकार को लागू करने के लिए महिलाओं को समाज में बच्चों की देखभाल करने में मदद की ही जानी होगी परंतु अभी भी राजकीय खर्च पर अच्छे से चल रही ऐसी व्यवस्थाएं उपलब्ध नहीं करवाई गई हैं।

1990 के बाद से स्थितियां लगातार और खराब हुई हैं जब कारपोरेट की खुली सेवा के लिए नीतियों में उदारीकरण और निजीकरण के बदलाव किए गए। नियमित नौकरियां समाप्त होना और नौकरियों के ठेकेदारीकरण ने महिलाओं को सबसे बुरी तरह प्रभावित किया है। संघ भाजपा की मौजूदा केंद्र सरकार द्वारा सभी श्रम कानूनों को कूड़ेदान में फेंक दिए जाने से सबसे बुरी शिकार भी महिलाएं हुई है। असंगठित 'स्वयंसेवी' श्रम शक्ति जो नियमित काम करती है परंतु नियमित वेतन की हकदार नहीं है में सबसे बड़ी संख्या महिलाओं की ही है। नियमित काम के खत्म होने से प्रोविडेंट फंड जो महिला मजदूरों को आर्थिक सशक्तिकरण देता है, खत्म हो रहा है। महिलाएं ईएसआई और मात त्व अवकाश से वंचित हो रही हैं। नियमित नौकरियां समाप्त कर समय आवधिक फिक्स्ड टर्म नौकरियां लाई जा रही हैं और श्रम संपदा के अनौपचारिकरण से महिलाएं यौन उत्पीड़न और कार्य स्थलों पर हिंसा की और अधिक शिकार हो रही हैं। यदि वे शिकायत करेंगी या विरोध करेंगी तो नौकरी खो देना अपरिहार्य होगा। मनुवादी सोच की केंद्र सरकार ने समान काम समान वेतन कानून को वेज कोड में एक वाक्य में ही समाप्त कर दिया है। भूमि सुधार विषय सूची से हटा दिए गए हैं और इसी के साथ पति पत्नी दोनो के नाम पट्टा लिखे जाने को भी।

केंद्र में मोदी सरकार के 6 वर्षों में बेरोजगारी शिखर पर है। इसके कारण वास्तविक वेतन में कटौती हुई है परिणाम स्वरूप महिलाओं के वेतन पर और अधिक असर हुआ है। सरकार द्वारा सभी सेवाओं जैसे स्वास्थ्य और शिक्षा के और अधिक निजीकरण और व्यवसायीकरण के कारण महिलाओं की शिक्षा और स्वास्थ्य तक पहुंच और अधिक कम हुई है। परिवार में लड़कों की अपेक्षा लड़कियां शिक्षा के निजीकरण के कारण शिक्षा से और अधिक वंचित होंगी। किसी भी आर्थिक स्तर के परिवार में महिलाएं स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण और व्यवसायीकरण के चलते स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंचने में झिझकेंगी जब तक कि वह अंतिम उपाय ना बचे। यह सब जनता के लुटेरों द्वारा जनता और देश की लूट को आसान बनाने के लिए किया जा रहा है। जनता के बिगड़ते आर्थिक हालत ने सभी तरह की सामाजिक असमानता को और गहरा किया है। इस परिस्थिति में संघ की मोदी सरकार 'हिंदू राष्ट्र' की नाव पर सवार है। समाज पर मनुवादी समझ थोपना चाहती है जिसमें सभी महिलाओं का दोयम दर्जा है और दलित महिलाएं एकदम निचले पायदान पर हैं। इसके बाद के अतिरिक्त सभी अल्पसंख्यकों को तो दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में देखा ही जाता है और महिलाओं को तो और भी नीचे। इस परिस्थिति में हाल ही में सीएए-एनआरसी-एनपीआर के पैकेज की नीति घोषित की गई है जिससे प्रत्येक तबके की महिलाओं की स्थिति को और बदतर होगी क्योंकि वह तो पिता के घर से निकलकर दूसरे परिवार में समाहित होने वाली संस्थागत प्रवासी हैं।

महिलाओं द्वारा यौन उत्पीड़न के खिलाफ सामने आकर बोलने से महिलाओं की सुरक्षा के सवाल बार-बार सामने आए हैं। कार्य स्थानों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न, कार्य स्थलों से घर तथा घर से काम तक पहुंचने के लिए यातायात के सुरक्षित साधन, पर्याप्त पथ प्रकाश, जवाबदेह पुलिस सुनिश्चित करवाने में सरकारें विफल है और व्यवहार में वह पित सत्तात्मक रवैया के पक्ष में खड़े रहती हैं जिनके चलते महिलाओं के काम के अवसरों की समानता में रुकावट खड़ी होती है। बहुत से बड़े आंदोलनों के बावजूद कार्य स्थलों पर यौन उत्पीड़न के अनुभव दोहराए जाते हैं। पुलिस को जवाबदेह बनाना, मुकदमों की निष्पक्ष व शीघ्र सुनवाई की सुनिश्चित होना इत्यादि करवाने की ओर सरकारों का कोई ध्यान नहीं है जबकि सभी राज्यों में निर्भया फंड बेकार पड़े हैं।

इस साल 8 मार्च एक ऐसे परिद श्य में आया है जिसमें भारत के संविधान की रक्षा करने के लिए हजारों हजार महिलाएं और लड़कियां सड़कों पर हैं। संघ भाजपा सरकार सांप्रदायिक साजिशों द्वारा कारपोरेट परस्त 'हिंदू राष्ट्र' जो कि अल्पसंख्यक विरोध, उत्पीड़ित जातियां के खिलाफ नफरत और पित सत्ता के लिए प्रतिबद्ध है को स्थापित करने पर आमदा है। भारत की जनता भारत की विविधता, अपनी पसंद के धर्म को मानने के अधिकार की रक्षा के लिए संघर्षरत हैं महिलाएं इन विरोध प्रदर्शनों में सबसे आगे हैं। वह साहस, गीतों व रचनात्मकता के रंग बिखेरते हुए, पुलिस दमन का मुकाबला करते हुए व रुकावटों को ढहाते हुए इन आंदोलनों को मजबूत कर रही हैं। वे विविधता भरे भारत को द ढ़ कर रही हैं। भारत में सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ बराबरी के लिए महिलाओं का संघर्ष सालों साल जारी है। आम सवालों पर और विशेष सवालों पर यह संघर्ष लगातार अभिव्यक्त हो रहा है। समानता, न्याय, मैत्री, बंधुत्व और स्वतंत्रता के अधिकार भारत के संविधान ने सभी लोगों के लिए वायदा किया था आज उसकी रक्षा के लिए महिलाएं और लड़कियां भारत की जनता का नेत त्व कर रही हैं; वही संविधान जो लैंगिक भेद नहीं करता तथा महिला पुरुष को समान अधिकार देता है।

आइए 8 मार्च 2020 को एक ऐसा अवसर बनाएं जब हम भारत की विविधता पर हमले के खिलाफ, संविधान जिसमें यह अधिकार प्रतिष्ठापित है पर हमले के खिलाफ, 'हिंदू राष्ट्र' थोपने के खिलाफ संघर्षो को मजबूत करेंगे। आइए संविधान में हमें दिए गए बराबरी के अधिकार को सुद ढ़ करें।

(पी ओ डब्ल्यू, प्रगतिशील महिला संगठन तथा स्त्री जागृति मंच पंजाब द्वारा जारी)

उत्तर प्रदेश सरकार के विषैले दाँत

(पष्ठ 3 का शेष)

बल प्रयोग के साथ ही फर्जी केस भी बनाया गया जिसमें 11 लोगों को नामजद किया गया। इनमें दो महिलाएं हैं। इनके अलावा केस में 800 अज्ञात लोगों का शमिल होना कहा गया है।

आंदोलन और चुनौतियां

यह आन्दोलन सभी ताकतों के सामने एक नई चुनौती पेश कर रहा है तथा साथ ही कई काम उनके सामने पेश कर रहा है। एक तो यह कि ये आंदोलन इसी तरह से चलते व बढ़ते रहें, नए-नए शहरों व बस्तियों में शुरु हों, इनके समर्थन में जनता के बड़े हिस्से इनके बीच पहुँचे और गैर मुस्लिम इलाकों में भी ऐसे संघर्ष विकसित हों। इसकी बड़ी चुनौती इन संघर्षों के नेत त्व की है, क्योंकि इसकी अभी तक चालक शक्ति मुस्लिम समुदाय की महिलाओं व आम लोगों में उनका भरा हुआ गुस्सा है और यह डर है कि इस जंग को नहीं जीता गया तो आरएसएस-भाजपा उनके अस्तित्व को ही समाप्त कर देगी।

आंदोलनकारियों का संसदीय विपक्षी दलों पर कोई विश्वास नहीं है, क्योंकि इन कानूनों को रोकने तथा इनका प्रभावी विरोध करने में संसदीय विपक्षी दल असफल रहे हैं। आन्दोलन के दौरान भी संसदीय विपक्षी दलों का व्यवहार उनके लिए उत्साहवर्धक नहीं रहा है। उनके अपने बीच के जो राजनीतिक संगठन हैं वे एक हद तक इस संघर्ष को संगठित करने में भूमिका भी निभा रहे हैं, सहयोग कर रहे हैं, कुछ नेत त्व की स्थिति में खड़े होने के प्रयास में हैं। पर बीच-बीच में सरकार और कोर्टों द्वारा जहां आन्दोलन वापस लेने की मांग तेज होने लगती है तो नेत त्व का संकल्प डगमगाता दिखने लगता है। इससे, यह पारम्परिक नेत त्व, जिसके पास इस तरह के संघर्ष को विकसित करने का ना नजरिया है, ना इरादा है, विश्वसनीय तौर पर खड़ा नहीं हो पा रहा है।

जहां जनता की इच्छा और इरादा पक्का है, यह आन्दोलन कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों व समाज के प्रगतिशील तबकों द्वारा एक अच्छी भूमिका निभाने की प्रचुर संभावना प्रस्तुत करता है। यह देश के वाम आन्दोलन, विशेषकर क्रांतिकारियों के लिए बड़ी चुनौती है। सूझबूझ, द ढ़ता और हिम्मत के साथ ही वे इस भूमिका को निभा पाएंगे और वो भी तब जब वे अपने को नहीं, जनता की आकांक्षाओं को केन्द्र में रखकर नीति बनाएंगे। लम्बे समय से कम्युनिस्ट आन्दोलन जनता की निष्क्रियता का रोना रोता रहा है। यह आन्दोलन उसे यह मौका नहीं देगा। इसका लक्ष्य बहुत स्पष्ट रूप से इन कानूनों को वापस कराकर जनता को जीत दिलाना होना चाहिए। साथ ही आंदोलन में समाज के उत्पीड़ित तबके सामने आ रहे हैं।

उ. प्र. को संघ-भाजपा ने दमन के जरिये आंदोलन को कुचलने के लिए चुना है। साथ ही साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण गहरा कर संघ-भाजपा फासीवादी हमले को तेज कर रहे हैं। संघ-भाजपा के हमलों को परास्त करना जनता के सामने एक फौरी तथा जरूरी कार्य है।

If Undelivered, Please Return to
Pratirodh Ka Swar
Monthly
Balmukand Khand,
Girinagar,
New Delhi-110019
Hindi Organ of
CPI(ML)-New Democracy

R. N. 47287/87
Book Post
To

प्रकाशक, मुद्रक व स्वामी यतेन्द्र कुमार द्वारा स्टार ऑफसेट, टी-2151/8-ए-2, न्यू पटेल नगर, नई दिल्ली-110008 से मुद्रित व बालमुकन्द खण्ड, गिरी नगर, नई दिल्ली-110019 से प्रकाशित। सम्पादक : यतेन्द्र कुमार